जापान-सागर के विजयी वीर ।

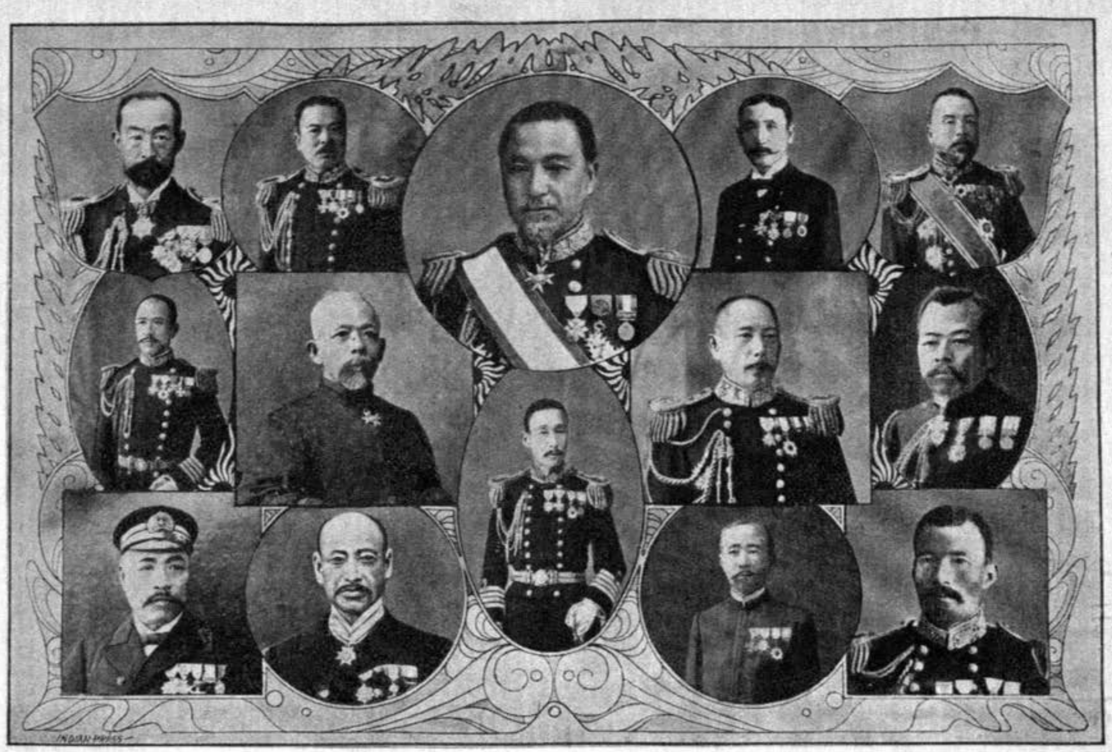

रियर ऐडमिरल यम० टोगो	वाइस ऐडमिरल मिसू	सेनापति ऐडमिरल टोगो	वाइस ऐडमिरल उरियू	वाइस ऐडमिरल देवा
कप्तान फूजी	वाइस ऐडमिरल करावका	रियर ऐडमिरल केटो	वाइस ऐडमिरल कामीमुरा	कप्तान सेटो
रियर ऐडमिरल टाकेटोमी	रियर ऐडमिरल योग्यूरा		रियर ऐडमिरल यमाडा	रियर ऐडमिरल शिमामुरा

विहारिणी विद्या की समस्या के हल करने में न लगे हों। केवल १९०४ ईसवी में इस तरह की कलों के बनाने में जितना रुपया ख़र्च हुआ है, उतना गत एक हज़ार वर्ष में नहीं ख़र्च हुआ। अमेरिका की गवर्नमेण्ट इस विषय में बेशुमार रुपया ख़र्च कर रही है। यदि कोई पवन-नौका ऐसी बन जाय जो चार पाँच मन गन-काटन नाम की प्रचण्ड ज्वालाग्राही बारूद लाद कर आकाश में उड़ सके, तो युद्धविद्या में एक विलक्षण युग उत्पन्न हो जाय। उसकी सहायता से शत्रु की हज़ारों फ़ौज पल में छिन्न भिन्न हो सके।

उस दिन हमने एक जगह पढ़ा कि अमेरिका में कैलीफ़ोर्निया के अध्यापक माण्टगोमरी ने एक काम लायक़ पवन-नौका बनाली। इस नौका में चिड़ियों के ऐसे पर हैं। यह चलानेवाले की इच्छा के अनुसार टेढ़ी, सीधी, ऊपर, नीचे चलती है। इसकी जाँच भी हो चुकी है। पहले एक ग़ुब्बारे से बाँध कर यह उड़ाई गई। जब ग़ुब्बारा ज़मीन से ३००० फ़ुट ऊपर पहुँचा तब पवन-नौका से उसका लगाव तोड़ दिया गया। पर उसकी जाँच में कोई विघ्न नहीं हुआ। वह बड़ी सरलता से आकाश में उड़ी। अध्यापक माण्टगोमरी को इस जाँच में बहुत कुछ कामयाबी हुई।

कैलीफोर्निया में एक और पवन-नौका बनी है। इसे होटन साहब ने बनाया है। इसके गैस भरने के थैले की लम्बाई ७६ फ़ुट है। उसमें दस हज़ार घन फ़ुट जलकर गैस रह सकती है। यह यञ्जिन की सहायता से चलती है। यञ्जिन का वज़न सिर्फ़ २८ सेर है। पर वह २० घोड़े की ताक़त रखता है। १२ फ़रवरी, १९०५, को इसकी जाँच हुई। ऊपर जाने पर इसे बहुत तेज़ हवा का सामना करना पड़ा। इससे होटन साहब इसके वेग को कम न कर सके और यह उड़ कर एक खाड़ी में जा गिरी। वहां होटन साहब बड़ी आपदा में फँसे। यदि अनायास दो एक नावें वहां से न निकलतीं, तो वे रसातल को चले जाते।

फ़्रांस में भी हवाई नावें बनाई जा रही हैं। समय समय पर उनकी जाँच होती है। इसी वर्ष ११ से १३ फ़रवरी तक पेरिस में एक जमाव हुआ था। यह जमाव सिर्फ़ हवाई नावों की जाँच के लिए था। १२५ फ़ुट ऊंचा एक मचान बनाया गया था। उसीके ऊपर से सब नावें उड़ाई गई थीं। नावें क्या थीं, नावों के छोटे छोटे नमूने थे। उनकी लम्बाई २ से १० इञ्च तक थी। एक को छोड़ कर वे सब इतने छोटे नमूने थे कि उनमें कोई बैठ नहीं सकता था। सिर्फ़ परीक्षा के लिए वे बनाये गये थे। वे हवा से अधिक वज़नी थे। वे इस प्रकार बनाये गये थे कि आकाश में सीधे उड़ें और हवा में अपना तुल्यगुरुत्व क़ायम रक्खें। चिड़ियों के रूप की भी दो एक फ्लाइंग मैशीनें

गेलेट साहब की बनाई हुई कल की चिड़िया।

जाँच के लिए लाई गई थीं। इनमें से गेलेट साहब की हवाई चिड़िया सबसे अच्छी निकली। हवाई नावों के कुछ नमूने अच्छे उड़े। दूर तक वे सीधे चले गये। पर कुछ नमूने ख़ूब सीधे नहीं उड़े। तथापि जो कुछ हुआ उसीको लोगों ने बहुत कुछ समझा। क्योंकि बिना नाविक के नाव का सीधा जाना बहुत कम सम्भव है। इस प्रदर्शनी में पालहान-पेरेट की नाव से लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। इसको पहले भी कई दफ़ा

जाँच हो चुकी थी और इसे कामयाबी भी हुई थी। इस दफ़ा भी इसे बहुत कामयाबी हुई।

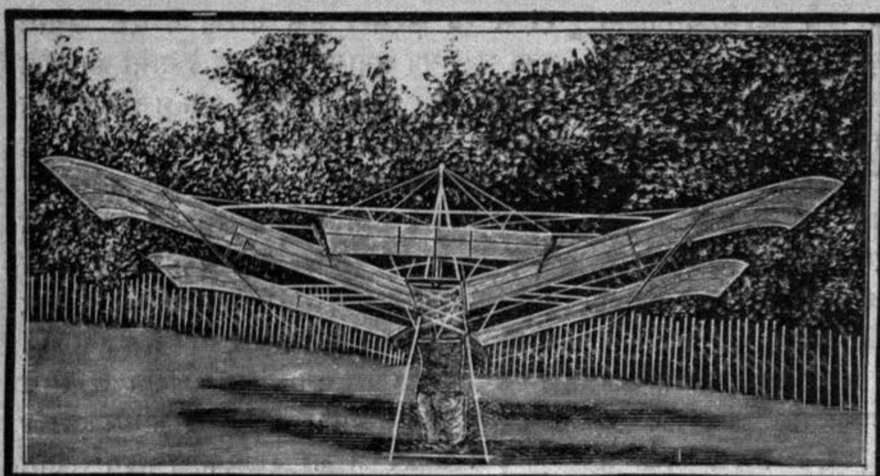

पालहान-पेरेट के एयरोफोन के सामने का दृश्य।

चिड़ियों के परों की तरह इसमें भी पर हैं। पर यह आकाश-विहारिणी चिड़िया दो नहीं, चार पर—एक एक तरफ़ दो दो—रखती है। इसमें नीचे एक खटोला सा है। उसी पर उसके बनाने वाले सवार होते हैं।

कप्तान फरबर ने भी एक हवाई नाव बनाई है। आप भी फ़्रांस के रहने वाले हैं। परन्तु हवा के रुख़ का ख़याल किये बिनाही आपने उसकी जांच की। इससे वह ज़मीन पर गिर कर चर हो गई और आप मरने से बचे। यह नाव भी एक ऊंचे खम्भे पर टांग कर उड़ाई गई थी।

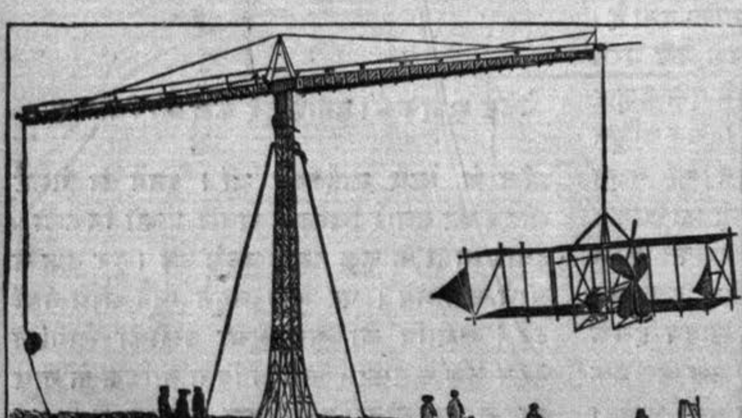

फरबर का एयरोफोन नं० ६ जिसकी परीक्षा हो रही है।

इन सब परीक्षाओं और नमूनों से साफ़ ज़ाहिर है कि योरप और अमेरिकावाले इस व्योमविहारिणी विद्या को सिद्ध करने के पीछे पड़े हुए हैं। यह सिद्धान्त है कि जो जिस बात के पीछे पड़ जाता है, उसमें उसे किसी न किसी समय ज़रूर ही सफ़लता होती है। अतएव पूरी आशा है कि सारी बाधाएं जल्द दूर हो जायंगी और पुष्पक विमान के समान पवन-यान किसी दिन आकाश में धड़ाके से उड़ने लगेंगे।

इतना लिख चुकने के बाद अध्यापक माण्टगोमरी के पवनयान की परीक्षा का हाल हमने पढ़ा। आप अमेरिका के रहनेवाले हैं और सन्ताक्लारा कालेज में अध्यापक हैं। वहां एप्रिल, १९०५, को आपकी पवननौका की परीक्षा हुई। एक ग़ुब्बारे से बांधकर वह उड़ाई गई। जब ग़ुब्बारा ८००० फुट ऊंचा चढ़ गया, तब जिस रस्से के योग से पवननौका ग़ुब्बारे से बँधी हुई थी, वह काट दिया गया। पवन-नौका १०० फुट नीचे गिरी; परन्तु फिर सँभल गई और कोई २० मिनट तक आकाश में स्थिर रही। जो आदमी उस पर सवार था, उसने उसे यथेच्छ अपने क़ाबू में रक्खा। उसने कई एक चक्कर

दिये ग्रैार ग्रन्त में नियत स्थान पर उसे वह उतार लाया। न नैाका ही को कोई हानि पहुंची ग्रैार न चढ़ने वाले ही को। इस जाँच से व्योमविहरण-सम्बन्धी एक कठिनता हल हो गई। ग्रर्थात् यदि ग्रध्यापक मॉंटगोमरी के तरीक़े से पवननैाका बनाई जाय तो वह हवा पर ग्रच्छी तरह तैर सकती है। दो बातों का हल करना ग्रब ग्रैार बाक़ी है। एक तो पवननैाका का ग्रापही ग्राप ज़मीन से ऊपर उठना; ग्रैार दूसरा ग्राकाश में यथेच्छ दिशा की ग्रोर उड़ना। ग्राशा है ये दोनों कठिनाइयां भी किसी दिन हल हो जांय।

इस लेख के यहांतक छप चुकने पर हमने १७ जून १९०५ के "सायंटिफिक ग्रमेरिकन" में पढ़ा कि ब्रेज़ील के सेंहोर ग्रलवेरस नामक एक विज्ञानी ने एक ग्राकाश-नैाका बनाकर प्रायः पूरी कामयाबी हासिल कर ली। वह नैाका एक ग़ुब्बारे से बांध कर ऊपर उठाई गई। ऊपर जाने पर उसका लगाव ग़ुब्बारे से ग्रलग कर दिया गया। तब वह बड़ी द्रुतगति से एक मील तक उड़ी ग्रैार बिना किसी दुर्घटना के नीचे उतर ग्राई। ग्रब शीघ्रही उसमें एक इतना बलवान् यञ्जिन लगाया जायगा जो उसे बिना ग़ुब्बारे की सहायता के ग्राकाश में उड़ाले जाय ग्रैार यथेच्छ विहार करने के बाद इच्छित स्थान पर लावै।

जापान-सागर के विजयी वीर।

रूस जापान की लड़ाई के कई इतिहास ग्रँगरेज़ी में इंगलैण्ड ग्रैार ग्रमेरिका से निकलते हैं। भाषा-सैान्दर्य्य, विषय-विवेचना ग्रैार ग्रालोचना के लिए, इनमें से, कासल कम्पनी का इतिहास सबसे ग्रच्छा है। वह लण्डन से निकलता है। पहले वह साप्ताहिक था; ग्रब, कुछ दिनों से, मासिक होगया है। सूशिमा की सामुद्रिक लड़ाई का वर्णन उसमें शायद नवम्बर तक छपै। पर जो इतिहास जापानी लोग ख़ुद जापान से ग्रँगरेज़ी में निकालते हैं, उसकी जुलाई ही की संख्या में इस लड़ाई का सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित हो गया है। उसे पढ़ कर जापानियों की ग्रतुल वीरता, निःसीम देशभक्ति, प्रचण्ड साहस ग्रैार ग्रप्रतिम रणकैाशल का चित्र सा हृदय पर खचित हो जाता है। इस इतिहास से बहुत सी नई नई बातें मालूम हुई हैं। बालटिक बेड़े को ज़ार ने जापानी बेड़े को जड़ से नाश करने के लिए भेजा था, सिर्फ़ व्लाडीवस्तोक पहुंचने के लिये नहीं। जो रूसी ग्रफ़सर जापान में क़ैद हैं, उनसे मालूम हुग्रा कि ग्रपने बेड़े के सामने वे जापानी बेड़े को कुछ समझते ही न थे। इसीसे निडर होकर उन्होंने जापान-सागर से निकल जाने का निश्चय किया था। एक रूसी ग्रफ़सर की राय में रूसी हार का कारण यह हुग्रा कि ऐडमिरल रोज़ेस्वेस्को ने इस बात का पता लगाने की ज़रा भी कोशिश नहीं की कि जापानी बेड़ा कहां पर है ग्रैार उसकी शक्ति कितनी है। रूसियों को ग्रपनी जीत पर पहले ही से इतना विश्वास था कि इन बातों के जानने की तकलीफ़ उठाना उन्होंने व्यर्थ समझा। जिन जहाज़ों के भरोसे रूस ने जापान को पहले ही से परास्त हुग्रा समझा था, जापानियों ने उनके भीतर सैकड़ों मन कोयले की ख़ाक ग्रैार कूड़ा, ग्रैार बाहर, सामुद्री घास ग्रैार काई लगी हुई पाई! रूसियों ने ग्रपने जहाज़ों में बे-हिसाब कोयला भरा था; जहां कोयला लादने की जगह थी वहां भी ग्रैार जहां न थी वहां भी। ग्रैार, कोयला ख़र्च हो जाने पर भी उन्होंने जगह साफ़ न की थी।

टोगोने किस कैाशल से ग्रपने बेड़े को छिपा रक्खा था, यह बात जापानी इतिहास-लेखक ग्रभी नहीं बताना चाहता। पर जगह जगह पर वह कहता है "as pre-arranged" (जैसा पहले निश्चय हो चुका था)। इससे प्रमाणित है कि

लड़ाई के पहले ही छोटी बड़ी सब बातें निश्चित हो चुकी थीं। २७ मई, १९०५, को सुबह बेतार की तारबर्क़ी से टोगो को रूसी बेड़े के आगमन की ख़बर मिली। ख़बर होते ही टोगो ने अपने सब अफ़सरों को तार दिया। जापानी बेड़ा कई भागों में बँटा हुआ था। दोपहर होते ही सब भाग अपने अपने स्थान पर पहुंच गये। शत्रु का आगमन सुनकर ख़लासियों से लेकर ऐडमिरलों तक को बेहद ख़ुशी हुई। हर आदमी को यही हौसला हुआ कि वह रूसियों को परास्त करके विजय का सारा यश अकेला ही लूट ले। लड़ाई दिन के दो बजे के क़रीब शुरू हुई और दूसरे दिन दो पहर बाद समाप्त हुई।

जापानियों ने ऐसी वीरता दिखलाई जैसी आज तक की सामुद्री लड़ाइयों में कभी नहीं सुनी गई थी। रूसियों का बेड़ा प्रायः समूल नष्ट हो गया। कई ऐडमिरल पकड़े गये। कई बड़े बड़े जहाज़ पकड़े गये। २७ मई को हवा बहुत तेज़ थी। समुद्र क्षुब्ध हो रहा था। टारपीडो बोट और डेसट्रायर नामक छोटे जहाज़ समुद्र में ठहर नहीं सकते थे। इस लिये उन्हें उथले पानी में जाना पड़ा। वे शुरू लड़ाई में शामिल नहीं हो सके। इस कारण उनके अफ़सरों और आदमियों को अवर्णनीय दुःख हुआ। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुनी। शाम को समुद्र कुछ शान्त हुआ। उन लोगों की ख़ुशी की सीमा न रही। वे भीम वेग से खुले समुद्र की तरफ़ दौड़े और मौत को एक तिनके के बराबर भी न समझ कर रूसी जहाज़ों पर उन्होंने बड़ेही बल विक्रम से हमला किया। अनेक छोटे बड़े जहाज़ उन्होंने तोड़ फोड़कर समुद्र के नीचे पहुंचा दिये। उनकी बहादुरी और निर्भयता की रूसियों तक ने सहस्र मुख से तारीफ़ की। एक रूसी अफ़सर ने जापानी टारपीडो बोटों के हमले की भयंकरता को "अवर्णनीय" कहा। टोगो ने ख़ुद कहा कि ये लोग आपस में एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करके आगे बढ़ते और शत्रुओं पर, जी जान की कुछ परवा न करके, हमला करते थे। एक टारपेड़ो बोट बहुत ही कमज़ोर थी। पर उसने सबसे बड़ा काम किया। कई व्यापारी जहाज़ आ रहे थे। इशारे से उसने उनको दूर जाने को कहा। पर उन्होंने इशारे नहीं देखे। तब वह उनके पास तक दौड़ गई और उनको युद्ध की सीमा से दूर रहने के लिए ख़बरदार किया। वे न जानते थे कि पास ही युद्ध हो रहा है। फिर वह बोट वहां से लौट आई और कई एक बहादुरी के काम उसने किये। लड़ाई के अन्त में विजय की बड़ाई टोगो ने नहीं ली; अपने अफ़सरों को भी नहीं दी। दी किसे? मिकाडो को! धन्य उदारता! धन्य राजभक्ति! मिकाडो ने उत्तर में अपनी जहाज़ी सेना और जहाज़ी अफ़सरों को यथेष्ट बधाई दी और विजय का कारण उन्हींकी देशभक्ति और वीरता को बतलाया। रूस-जापान में अब परस्पर सन्धि हो गई है। सन्धि में भी महाराज मिकाडो ने अपनी उदारता से संसार को चकित कर दिया है। उन्होंने रूस से लड़ाई का ख़र्च नहीं लिया। सिर्फ़ आधा सघालीन टापू और कैदियों के खिलाने पिलाने का ख़र्च लेकर ही रूस को उन्होंने छोड़ दिया। इस उदारता पर प्रायः सारा संसार आपकी प्रशंसा कर रहा है। पर रूसवाले कहीं इस उदारता को कमज़ोरी न समझ लें।

जिन वीर अफ़सरों ने जापान-सागर में रूसी बेड़े का नाश करके जापान की सामुद्रिक शक्ति को निष्कण्टक कर दिया, उनके समूह का चित्र हम इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

पत्थर का एक अद्भुत गोला।

"सायंटिफ़िक अमेरिकन" में पत्थर के एक अद्भुत गोले का हाल छपा है। अमेरिका की रियासतों में ओहियो एक रियासत है। वहां

मरियन एक जगह है। वहां के प्रधान क़बरिस्तान में एक यादगार है। कुछ काल से लोग इसकी ओर बहुत दत्तचित्त हो रहे हैं। यह यादगार पत्थर का एक बड़ा गोला है। इसका व्यास ३६ इंच है। यह एक बहुत बड़ी कुरसी अर्थात् आधार; या स्तम्भपाद, पर विराजमान है। उसी पर यह अपनी धुरी के चारों तरफ़ उत्तर से दक्षिण की ओर धीरे धीरे आप ही आप घूमा करता है। ऐसा जान पड़ता है कि इसके घूमने का कारण केवल सूर्य की किरणें ही हैं।

यह यादगार बहुत वर्ष हुए मरियन के रहने वाले सी॰ बी॰ मर्चण्ट नाम के एक साहूकार ने बनवाया था। परन्तु १९०४ ईसवी तक यह बात किसी को नहीं मालूम थी कि यह गोला घूमता है। अकस्मात् इस साल क़बरिस्तान के नौकरों ने देखा कि गोला कुछ घूम गया है। तब से इसकी जांच होने लगी। अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गई है कि यह गोला नित्य घूमा करता है।

जब यह गोला रक्खा गया था, तब यह अपने आधार, अर्थात् कुरसी, से कस कर नहीं बांधा गया था। इसका खुरखुरा भाग सिर्फ़ एक छेद के भीतर रख दिया गया था, जिसमें खुरखुरेपन के कारण यह अपने स्थान से हट न सके। पर अब यह खुरखुरा भाग उत्तर की ओर खिसक कर ऊपर अधबिच में आ पहुंचा है। १ली अगस्त, १९०४, से इसने ५ इंच और आगे को क़दम बढ़ाया है। यदि यह कहा जाय कि ऐसी आश्चर्यमयी लीला दिखाने में कोई आदमी हथफेर या चालाकी करता है, तो यह बात सर्वथा असम्भव है। क्योंकि गोला तौल में ५२ मन है और बोझ उठाने की किसी कल के बिना नहीं घुमाया जा सकता है। इस अद्भुत प्राकृतिक घटना के समझाने के लिए कई एक कल्पनायें की गई हैं। गवर्नमेण्ट के भू-गर्भ-विद्या-विशारद एडवर्ड आर्टन साहब ने एक पत्र क़बरिस्तान की संरक्षक कमिटी के एक मेम्बर को लिखा है। उसमें आप कहते हैं—"इस गोले की गति के दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि बहुत बड़े और वज़नी आधार की अपेक्षा गोले का ऊपरी भाग अधिक गरम हो जाने से अधिक फैलता है। इसीसे गोला ऊपर की ओर जाने लगता है। सूर्यास्त के बाद उस फैलाव का संकोच इतना नहीं होने पाता जिससे गोले का खुरखुरा भाग फिर जहां का तहां आजाय। दूसरा कारण यह हो सकता है कि गोले की एक तरफ़ की परिधि लम्बी होती जाती है। इससे गोले और उसके आधार के बीच एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति उत्पन्न होजाती है"।

अमेरिका के अध्यापक बेकर और जिलबर्ट का भी भू-गर्भ-विद्या में बड़ा नाम है। अतएव उनसे भी इस विषय में सम्मति ली गई; परन्तु कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं मिला। गोले के घूमने का ठीक कारण वे भी निश्चित नहीं कर सके। उन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहा कि इसके घूमने का कारण सूर्य्य देवता की किरणें ही हो सकती हैं। अध्यापक बेकर का यह भी कथन है कि यदि गोले का घूमना उत्तर से दक्षिण के बदले में दक्षिण से उत्तर की तरफ़ होता, तो उन्हें इस लीला के समझने में कठिनता न पड़ती। क्योंकि उस हालत में गोले का फैलाव विशेष करके दक्षिण ही की तरफ़ होता और वहां पर ऊंचा उठकर वह नीचे की तरफ़ फिसल पड़ता। अध्यापक जिलबर्ट का अनुमान है कि शायद प्याले के आकार वाले छेद में (जिसपर गोला रक्खा हुआ

है) और गोले में कोई ऐसी बात हो जिसके कारण गोले के दोनों ओर असमान रगड़ होने से गोला चलने लगता हो। इस यादगार के पास ही दक्षिण की तरफ़ एक पेड़ है। इससे यह भी कहा जाता है कि इसके कारण गोले के कुछ भाग पर धूप और कुछ पर छाया रहती है। शायद इसीसे गोला घूमता हो। जो हो, अभी तक इसके विषय में कोई निश्चित राय स्थिर नहीं हुई और इसने वैज्ञानिकों की बुद्धि को चक्कर में डाल रक्खा है।

देवीप्रसाद शुक्ल।

हिमस्फटिक।

प्रकृति के प्रेमियों का मन और किसी चीज़ के जानने में उतना नहीं लगता जितना हिम के अनन्त आकारों के जानने में लगता है। तूफान के बाद जो हिम पेड़, झाड़ी और ज़मीन पर जमा हो जाती है, वह जो दृश्य दिखाती है वे दृश्य केवल शोभायुक्त ही नहीं किन्तु अद्वितीय हैं। हिम के अनन्त आकार होते हैं। हिम के सम्बन्ध में प्रकृति शिल्पी का काम करती है। हिम से वह वही काम लेती है जो कुम्हार मिट्टी से लेता है।

हिम अर्थात् बर्फ़ (पाला) के तूफान आया करते हैं। तूफान के समय गिरे हुए हिम के परमाणु, विलग करके, यदि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से अच्छी तरह देखे जायं तो प्रकृति की अद्भुत कारीगरी देखने में आती है। जमा हुआ हिम स्फटिक के सदृश होता है। उसीसे उसे हिमस्फटिक कहते हैं। हिमस्फटिक की भिन्न भिन्न अनन्त सूरतें होती हैं। यन्त्र की सहायता के बिना भी यह देखा जाता है कि उनकी बनावट एक आश्चर्यजनक नियम के अनुसार होती है। हिम के परमाणुओं का फ़ोटो लिया जा सकता है। फ़ोटोग्राफ़ी की बदौलत आज तक हिम की अनेक शकलों के फ़ोटो लिए गये हैं। सरदी गरमी से उन शकलों के बरबाद होने का डर नहीं रहता। और आदमी जब चाहे तब उन पर विचार कर सकता है। आज तक हिमस्फटिक के जितने दृश्य देखे गये हैं, उनसे हिमस्फटिक की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। हिमस्फटिकों के जाँचने में पहली बात जो ध्यान में आती है, वह यह है कि हर स्फटिक में प्रायः छही भुजा होती हैं—फिर चाहे शकल उसकी जैसी हो। कुछ को छोड़ कर सब स्फटिकों में, जिनकी शकलें फ़ोटोग्राफ़ के केमरा या सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के सहारे खींची गई हैं, या तो छ-कोण होते हैं या छ-भुज। इस लेख के साथ हिमस्फटिक की जो तसवीरें दी गई हैं वे एक दूसरी से भिन्न हैं, तथापि ऊपर लिखी हुई बात को वे स्पष्ट साबित करती हैं। चौथी शकल को देखिए। वह ठीक षट्भुज है। पांचवी शकल का बाहरी हिस्सा यद्यपि एक लम्बे कोणवाला षट्भुज है, तद्यपि उसका भीतरी हिस्सा पूरा षट्भुज है और बहुत ख़ूबसूरती के साथ बना हुआ है। दसवीं शकल में कुछ थोड़ा घटाव बढ़ाव है, जिससे यह सूचित होता है कि जिस समय स्फटिक का फोटो लिया गया था, उस समय छ कोनेदार षट्भुज बन रहा था। यह एक ऐसी मिश्रित शकल है जिसके भीतर ध्यानपूर्वक देखने से और भी कई शकलें देख पड़ती हैं। पहली शकल बहुत सुन्दर है। वह चौथी शकल के घटाने बढ़ाने से बनी है। इस शकल में स्फटिक इस भांति बांटा गया है कि उसका अधिक भाग केवल कोने ही हैं।

स्फटिक किस तरह बढ़ते हैं यह दूसरी, तीसरी, और आठवीं शकल से सूचित होता है। इनकी भुजायें केन्द्र से निकली हुई हैं और छ हैं। परन्तु दूसरी और तीसरी शकलों का भीतरी ढांचा एक छोटा सा षट्भुज है। जो षट्भुज दूसरी शकल में है, वह सब शकलों के षट्भुजों से अधिक नाज़ुक और परिपूर्ण है। उसमें इस तरह की कम से कम चार शकलें साफ़ साफ़ देख पड़ती हैं और उसके

१

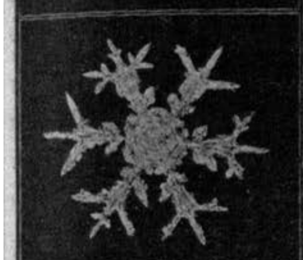
२

३

४

५

बीचों बीच छ छोटे छोटे वृत्त हैं। तीसरी शकल को एक मिली हुई शकल कह सकते हैं, क्योंकि वह किसी दूसरी शकल के मेल से बनी हुई मालूम होती है। तो भी वह एक ही स्फटिक है जो बादलों की कई तहों के भीतर से आते समय सरदी गरमी पाकर बना है।

जिन स्फटिकों की यहां पर तसवीरें दी गई हैं, वे कई कारणों से विशेष मनोरञ्जक हैं। जिन चीज़ों को हम रोज़ देखते हैं, उनमें से कई चीज़ों से ये स्फटिक बहुत कुछ मेल रखते हैं। सातवीं शकल के तीन छोटे छोटे नमूनों को देखिए। मानो वे पच्चीकारी के नमूने हैं। अगल बगल वाले स्फटिक कमीज़ के बटन से मालूम होते हैं; मानों वे अभी तैयार किये गये हैं। बहुत सी शकलों को देखने से जान पड़ता है कि वे लकड़ी के काम के नमूने हैं। पाँचवीं शकल इस तरह का सबसे बढ़िया नमूना है। और चौथी शकल को देखने से तो एक कामदार रुमाल का धोखा हो सकता है। पहली छठी और दसवीं शकलें ज़री के काम का नमूना मालूम होती हैं। छठी शकल में किनारों की सतह इतनी पतली है कि वह बारीक मलमल सी मालूम होती है। हिम के गाले अर्थात् टुकड़े मूंगे की भी शकल के होते हैं। तीसरी शकल मूंगे की भुजाओं की बहुत सुन्दर नक़ल है। दूसरी शकल की भी बनावट इसी तरह की है। मेज़, कुर्सी इत्यादि बनाने वालों के लिए आठवीं शकल बहुत काम की हो सकती है। लकड़ी के सामान पर

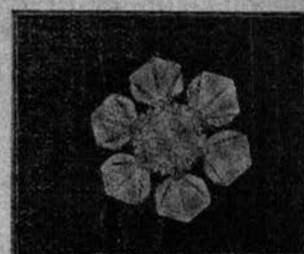
६

७

८

९

१०

फूल बनाने में यह उपयोग में आ सकती है। बहुत से फूल, जो तैलयुक्त कपड़े पर छापे जाते हैं, ऐसे ही होते हैं।

हिमस्फटिक के फोटो उतारना और उतारी हुई तसवीरों पर विचार करना थोड़े ही दिनों से प्रचार में आया है। हिमस्फटिक की सबसे अधिक तसवीरों का संग्रह अमेरिका के वरमाण्ट नामी शहर के निवासी के० डबल्यू० ए० बेण्टले साहब ने किया है। २५ वर्ष से अधिक समय उन्होंने इसी काम में लगाया है। भाग्यवश वे ऐसे स्थान में रहते हैं जहां जाड़े में केवल उत्तरीय और पश्चिमीय तूफ़ान ही नहीं आते, किन्तु पूर्वीय और दक्षिणीय तूफान भी आते हैं। इन तूफ़ानों में से बहुत से उसी जगह उत्पन्न होकर ख़तम हो जाते हैं, पर कितने ही दूर दूर तक फैल जाते हैं। बेण्टले तथा और और हिमस्फटिक के ज्ञाताओं का यह मत है कि सब तरह से परिपूर्ण स्फटिक केवल बड़े तूफान में ही उत्पन्न होते हैं। आश्चर्य्य की बात यह है कि बहुत से अच्छे अच्छे हिमस्फटिक ऐसे समय में पैदा होते हैं जब हवा बहुत ही ठंढी चलती है, अर्थात् जब थर्मामिटर का पारा बहुत अधिक सरदी ज़ाहिर करता है, तब वे उत्पन्न होते हैं। देखनेवालों ने त्रिभुज की शकल के कुछ हिमस्फटिक ऐसे देखे हैं जो इसी तरह के भारी तूफ़ान में बने थे। त्रिभुज की शकल का सबसे अच्छा नमूना दसवीं शकल है। परन्तु उसकी बाहरी रेखा से वह छ बिन्दु बनाता हुआ दिखाई देता है। और यद्यपि उसका ढांचा त्रिकोण है, तथापि वह एक पतङ्ग के आकार का है। उत्तर और पश्चिम वाले तूफानों की अपेक्षा पूर्व और दक्षिण वाले तूफानों में अधिक उत्तम स्फटिक बनते हैं। कारण शायद यह है कि पहले प्रकार के तूफानो में सर्दी अधिक रहती है और वायु अधिक रूखी होती है। पर पिछले प्रकार के तूफ़ानों में नमी अधिक होती है। हिम के तूफ़ान हिमप्रधान देशों में आते है। हिन्दुस्तान में हिमालय प्रान्त को छोड़कर और कहीं ऐसे तूफ़ान नहीं आते जिनमें हिमस्फटिक बन सकें। स्फटिक बनने में हिमोत्पादक बादलों की दूरी का बहुत असर पड़ता है। जो स्फटिक दूर के मेघों की तहों से आते हैं, उनके आकार में, पृथ्वी तक आनेमें, बहुत कम फेर फार होता है। जो स्फटिक कम दूर के मेघों की नीचे की तहों से आते हैं उनमें अधिक फेरफार होता है। ऊपर से नीचे आने में स्फटिकों के आकार में बहुधा बहुत फेरफार हो जाता है, यहां तक कि कभी कभी उनकी पहली शकल बिलकुल ही बदल जाती है। हिम के टुकड़े बहुत मुलायम होते हैं। अतएव यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं जो वे अपनी असली शकल में न बने रहें, विशेष करके जब वे वायु के झकोरों से इधर उधर फेंके जाते हैं। इस दशा में ऐसे स्फटिकों का एकत्र करना, जो बिलकुल ही न बदले हों, या जो थोड़ा बदले हों, बहुत कठिन है। ऐसे तूफ़ान बहुत कम आते हैं जिनसे प्राप्त हुए हिमस्फटिक तसवीर बनाने या जांच करने के योग्य हों। यही कारण है जो स्फटिक के सुन्दर और उपयोगी नमूने बहुत कम मिलते हैं।

हिम-स्फटिक की बातें जानने तथा उनकी तसवीरें बनाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि नमूना एकत्र करने का काम इतनी सरदी में किया जाय जो पारा के जम जाने के चिन्ह (Freezing point) से अधिक हो। इस लिए इस काम के लिए एक ऐसा स्थान चुना जाता है जिसमें एक ही खिड़की खुली हो। वह स्थान मकान की उस दिशा में होना चाहिए जिधर तूफ़ान बहुत आते हों, जिसमें हिम खुली हुई खिड़की में गिरे। परमाणुओं को जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी उठाना चाहिए, और इस तरह उठाना चाहिये जिसमें उन्हें हानि न पहुँचै। फोटो लेनेवाले केमरा (यन्त्र) के पास उनको रखने का तरीक़ा यह है कि उनको काले काग़ज़ के एक टुकड़े से उठावै। ऐसा करने से काला काग़ज़ नीचे हो जायगा और स्फटिक के परमाणु ऊपर। फिर

उन्हें उचित स्थान पर रख कर पर से दबावे, जिसमें वे काग़ज़ की सतह से मिल जांय। स्फटिक का फोटो लेने का समय रोशनी के अनुसार कम या ज्यादः होता है । इसके लिए कम से कम चार सेकेण्ड चाहिए। पर कभी कभी तीन सौ सेकण्ड तक की ज़रूरत पड़ती है। इस काम में फ़ोटोग्राफ़र को बहुत सचेत रहना चाहिए। ऐसा न हो कि गर्म हवा का झोंका खाकर स्फटिक को हानि पहुँचै । केमरा के स्लाइड (Slide) को दस्ताने पहन कर छूना चाहिये। क्योंकि थोड़ी ही भी सांस रह जाने से स्फटिक की शकल इतनी बदल जाती है कि उसकी बारीक लकीरें धुँधली हो जाती हैं, या बिलकुल ही जाती रहती हैं। जब तक केमरे की सरदी एक नियत अंश तक न हो, नमूने की तसवीर लेना व्यर्थ है। हिम-स्फटिक की तसवीरें लेने में बड़ी बड़ी कठिनायों का सामना करना पड़ता है। इसीसे हिम की बनावट के बहुत कम फोटो प्राप्त हुए हैं। दुनिया में सबसे अधिक फोटो बेण्टले साहब के पास हैं। तोभी उनकी संख्या एक हज़ार से अधिक नहीं हैं।

सरयूनारायण तिवारी।

प्रपञ्च ।

हिन्दू शास्त्रों में जगत का नाम प्रपञ्च है। क्षिति, जल, तेज, वायु और व्योम—इन्हीं पञ्चभूतों के मेल से जगत बना है। इसी कारण जगत का नाम प्रपञ्च पड़ा है। किन्तु इन पञ्चभूतों का स्वरूप क्या है? अनेक लोग क्षिति का अर्थ पृथ्वी लगाते हैं; और जल से पानी, तेज से अग्नि, वायु से हवा और व्योम से शून्य (Vacuum) समझते हैं। यदि शास्त्रीय क्षिति, आदि शब्दों का यही अर्थ कहा जाय, तो विज्ञानी तार्किक इसको अपनी तलवार से काटने लगते हैं। वे कहते हैं—क्षिति, जल, तेज, वायु, और व्योम को पञ्चमहाभूत कहते हैं। यही जगत के उपादान हैं। पाश्चात्य विज्ञान कहता है कि पृथ्वी, जल, और वायु आदि मूलभूत (Elements) नहीं। ये सब यौगिक (Compound) पदार्थ हैं। अतएव जगत का मूल उपादान निर्णय करने में इनका प्रसङ्ग उठाना ठीक नहीं है। किन्तु वास्तविक बात यों है कि क्षिति आदि का यह अर्थ ही नहीं है। गर्भोपनिषद् में कहा गया है कि जो कठिन (Solid) पदार्थ है, वही क्षिति, जो द्रव या तरल है वही जल, जो उष्ण (Gaseous) है वही तेज है।

तत्र यत् कठिनं सा क्षितिः यद् द्रवं तद् आपः
यद् उष्णं तत् तेजः इत्यादि—(गर्भोपनिषद्)

यह सब लोग जानते हैं कि प्रचलित विज्ञान के मत से मैटर (Matter) अर्थात् पदार्थों की तीन दशायें हैं। दृढ़, द्रव और वाष्पीय (Solid, Liquid and Gaseous) एक ही पदार्थ अवस्था-भेद से कभी कठिन, कभी द्रव, और कभी वाष्पीय आकार धारण करता है। जैसे जल बर्फ़ की दशा में दृढ़, पानी की दशा में द्रव और भाप की दशा में वाष्पीय होता है। इसी तरह गन्धक कठिन, द्रव और वाष्पीय आकार धारण कर सकता है। एक पदार्थ के इस तरह अवस्था-परिवर्त्तन में ताप का तारतम्य सापेक्ष्य है। जल से ताप दूर होने से वह जमकर बर्फ़ हो जाता है। वही जल ताप की अधिकता से भाफ का आकार धारण करता है। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि वाष्पीय पदार्थ में साधारण रीति पर ताप की अधिकता रहती है। इसी कारण उसकी साधारण अवस्था वाष्पीय है। यहां तक कि उन लोगों ने विज्ञानशालाओं में यन्त्रों की सहायता से "हाइड्रोजन" से गैस को तरल बना डाला है। ऐसा करने के लिए वे और कुछ नहीं, केवल कल के बल से हाइड्रोजन का ताप दूर कर देते हैं। अतएव आर्य्य ऋषियों ने गैस को जो तेज की

व्याख्या दी, वह असङ्गत नहीं है। तब यह कहना उचित है कि शास्त्रीय क्षिति, जल और तेज, विज्ञान के दृढ़, द्रव और वाष्पीय—Solid, Liquid और Gaseous—हैं। किन्तु वायु और व्योम क्या हैं ?

पाश्चात्य विज्ञान को जड़ पदार्थों की दृढ़, द्रव और वाष्पीय अवस्थाओं के सिवा और किसी अवस्था की बहुत दिनों तक ख़बर नहीं थी। अब उसको "ईथर" (Ether) नाम का एक और पदार्थ मानना पड़ा है। पहले "ईथर" एक कल्पित पदार्थ जान पड़ता था। और उसको वे लोग हाइपोथेटिकल ईथर (Hypothetical Ether) कहते थे। क्योंकि ईथर के समान कोई चीज़ माने बिना पाश्चात्य विज्ञान की चलती हुई पहिया रुकने लगी थी और अलोकाकर्षण आदि की मीमांसा नहीं की जा सकती थी। सूर्य्य पृथ्वी से ९२०,००,००० मील दूर है। सूर्य्य से रोशनी किसकी सहायता से पृथ्वी तक पहुंचती है ? दूर के सब पदार्थ परस्पर किसके अवलम्ब और माध्याकर्षण पर ठहरे हुए हैं ? बिना मध्यवर्ती (medium) के ऐसा हो ही नहीं सकता। इसीसे पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ईथर मानना आरम्भ किया और क्रमशः अब उनको ईथर के अस्तित्व में कुछ भी सन्देह न रह गया। किन्तु ईथर है क्या पदार्थ ? इसपर वैज्ञानिक समाज में अनेक सङ्कल्प विकल्प होने लगे। वास्तव में ईथर जड़ की एक अवस्था मात्र है जिसे आर्य्य ऋषियों ने वायु कहा है। यह पहले उनकी धारणा में नहीं आया। हम बहुत दिनों की बात नहीं कहते। सन् १८९९ ई० में अमेरिका के एक प्रधान वैज्ञानिक ने ईथर का मैटर होनाही स्वीकार नहीं किया था*। किन्तु विज्ञानचर्च्चा की ज्यों ज्यों उन्नति होती गई, त्यों त्यों उन्होंने समझा कि दृढ़, द्रव और वाष्पीय अवस्थाओं के सिवाय जड़ की कोई और भी अवस्था है। वही अवस्था, अर्थात् ईथर, हम लोगों का चिरपरिचित वायु या मरुत् है। इसीसे लार्ड केलविन आदि वैज्ञातिक अब जड़ की गुरु और अगुरु यही दो अवस्थायें स्वीकार करते हैं। अथवा वे यों कहते हैं कि दृढ़, द्रव और वाष्पीय में भार (वज़न) है और ईथर में भार नहीं है। बात यह कि हमलोगों का मरुत् कोई काल्पनिक पदार्थ नहीं। वह जड़ की ईथर नामक अवस्था है।

इस ईथर के गठन-सम्बन्ध में अभी वैज्ञानिक-मण्डली में ख़ूब आलोचना और तर्कवितर्क हो रहे हैं। पहले वे लोग समझते थे कि ईथर एक निर्विशेष (Homogeneous) पदार्थ है। किन्तु अब इस पर कुछ लोगों को सन्देह हुआ है। कुछ दिन हुए अमेरिका के एक प्रधान वैज्ञानिक (Fessenden) ने यह राय दी थी कि ईथर निर्विशेष नहीं, सविशेष पदार्थ (Composite Body) है। यह सूक्ष्मतर पदार्थों के संघात से गठित हुआ है। ईथर से सूक्ष्मतर अवस्था को उन्होंने ईथरन (Etheron) नाम दिया है। ईथर उसी ईथरन का विकार है, और वही ईथर हमलोगों का व्योम है*।

अब यह बात स्पष्ट हुई कि असल में जड़ की तीन नहीं पाँच अवस्थायें हैं। Solid-क्षिति, Liqnid-जल, Gaseous-तेज, Ether-वायु, और Etheron-व्योम। पाश्चात्यविज्ञान अभी इससे आगे नहीं गया है। किन्तु व्योम के आगे भी जड़की और दो सूक्ष्मतर अवस्थायें हैं। तन्त्र की भाषा में उनका नाम अनुपादक और आदि तत्व है। सांख्यवालों ने उनको अहङ्कारतत्व और महत्तत्व के नाम से बतलाया है। क्षिति, जल आदि पञ्चभूत उनके पञ्चतन्मात्र है। अतएव जड़ को सब मिलाकर सात अवस्थायें हुई। सूक्ष्मतम से स्थूलतम में उतारने

* I make a sharp distinction between the Ether and Matter and feel somewhat confused to hear anyone speak of the Ether as Matter.—Matter, Ether and Motion 1. p. 35.

* "The Globe" of the 7th December, 1901, in its 'Echos of Science' reports :—"Mr. R. A. Fessenden, one of the most eminent American Physisists, shows that the so called Ether is a composite body having a structure with elastic properties. Ether according to him is a structure of vortices in a fluid which he calls Etheron. This fluid is not the Ether but the Etheron and the Ether is itself a finer kind of Matter."

से उनका नाम क्रमानुसार आदितत्व, अनुपादक तत्व, आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व और क्षिति तत्व होता है। साधारण रीति पर शास्त्र में पञ्चभूतोंही का उल्लेख देखा जाता है "तस्माद् एतस्माद् आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी।" किन्तु कहीं कहीं आकाश के ऊपर भी पूर्वोक्त दो तत्वों का उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

अण्डकोषे विराजे ऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।
वैराजः पुरुषो योऽसौ स एव धारणाश्रयः॥

यह ब्रह्माण्ड विराट पुरुष का शरीर है। वह सात आवरणों से ढका है। वे सात आवरण हमारे पूर्वोक्त क्षिति, जल, तेज, वायु, व्योम, अहङ्कार और महत्तत्व हैं।

अब हम आशा करते हैं कि विज्ञान की धारावाही उन्नति के इस सुसमय में जड़की यह सूक्ष्मतम दो अवस्थायें भी आविष्कृत हो जायँगो। इथर की सूक्ष्म से सूक्ष्मतमपर्य्यन्त चार अवस्थायें हैं। अब तक उनमें से दो विज्ञान की आँखों को दीख पड़ी हैं। किन्तु और लोग उन शेष दो अवस्थाओं को भी जान चुके हैं।* अतएव ऐसी आशा दुराशा नहीं है कि काल पाकर इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विज्ञान और प्राच्य विज्ञान का मेल खाजायगा। गवीश।

हवाई कोठरी।

प्यारे पाठक! आपने अमरकोश का नाम सुना होगा। शायद उसे आपने कण्ठस्थ भी किया हो, क्योंकि आज कल की परिपाटी के अनुसार संस्कृत पढ़ने वाले लड़के पहले पहल अमरकोश, लघुकौमुदी अथवा शीघ्रबोध अक्षर पहिचानते ही पढ़ने लगते हैं। उसमें एक शब्द है प्रपात। प्रपात का अर्थ है ख़ूब गिरना। पर प्रपात कहते किसे हैं? पर्वत या किसी ऊंची जगह से किसी नदी के पानी के गिरने को प्रपात कहते हैं। प्रपात का दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है। देखिये रघुवंश में कवि कालिदास जी क्या कहते हैं—

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तनिरुढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश॥

अर्थात् दूसरे दिन अपने सेवक राजा की भक्ति की परीक्षा करने के लिए वशिष्ट मुनि की होमधेनु, नन्दिनी, गङ्गा के प्रपात के पास वाली, हरियाली से ढकी हुई हिमालय की कन्दरा के भीतर पैठी। नदियों के उद्गम-स्थान में प्रपात अकसर होते हैं। नहरों के पानी के प्रपात भी अक्सर और आरा ऐसे पर्वतहीन देश में हैं। पर जबलपुर के पास मेकलसुता, नर्मदा, का एक बहुत बड़ा प्रपात है। वहां नर्मदा ऊंचे पर्वत से कई जगह पर गिरती हुई एक बार भेड़ाघाट पर अधिक ऊंचे से गिरती है। उस जगह का स्थानीय नाम धुंआधार है। इस नाम से ही अनुमान हो सकता है कि वहां का दृश्य कैसा अद्भुत होगा। यह प्रपात बहुत बड़ा नहीं है। जो प्रपात बहुत बड़ा होता है, उसका दृश्य और भी अधिक मनोरम होता है! पर बड़ा प्रपात किसे कहना चाहिये? इस प्रश्न के उतर में कहा जा सकता है कि जहां जल अधिक ऊंची जगह से गिरता हो, और जल का एक ऊंचा खम्भा सा दूर तक देख पड़ता हो; अथवा जहां ख़ूब चौड़ी नदी ऊंचे से नीचे चक्कर खाकर गिरती हो,—उसे बड़ा प्रपात कहना चाहिए। यों तो पृथ्वी पर बड़े बड़े कितने ही प्रपात हैं, पर एक बहुत ही बड़ा प्रपात उत्तरी अमेरिका में है, जहां नियाग्रा नद प्रायः २५० फ़ीट, अर्थात् ८३ गज़, की उँचाई से नीचे गिरता है। नियाग्रा बहुत विस्तृत और भारी नद है। अस्सी गज़ का उँचाई का भी

---

* ईथर के सम्बन्ध में मिस बेसेण्ट ने अपने 'Occult chemistry' में लिखा है—

"The Ether is not homegeneous, but consists of particles of numerous kinds and a careful and more detailed method of analysis reveals that it has four distinct degrees giving us with the solid, liquid and gaseous, seven instead of four sub-states of matter in physical world."

ख़याल करना चाहिये। अंग्रेज़ी ढँग के आज कल के रहने के मामूली कमरे कोई ५ गज़ ऊंचे होते हैं। वैसे सोलह-मंज़िले कोठे की उँचाई कितनी होगी! इतनी उँचाई से इस नद का प्रपात कैसी आश्चर्य-जनक घटना होगी! ऐसी भयानक घटना समीप से देखने की चीज़ नहीं। पर आप हमारी हवा की कोठरी में आइये। एक बार आपको हम इसके समीप की भी बहार दिखला लावें।

इसे पास से देखनेवालों में एक स्त्री भी थी। उसकी बात जानने योग्य है। वह अमेरिका में एक दरिद्रा स्त्री थी। सांसारिक कठिनाइयां झेलते झेलते वह थक गई थी। उसने यह विज्ञापन दिया कि मैं जीती अपने के एक पीपे में बन्द करके नियाग्रा प्रपात के ऊपर से बहा दूंगी और जीती रहूंगी। जिन्हें देखना हो वे इतनी फ़ीस देकर प्रपात की जगह उपस्थित रहें और मुझे पीपे से खोले जाते समय देखें। यहां होता तो शायद वह आत्मघात की चेष्टा में पकड़ी जाती और ऐसा करने से रोक दी जाती। पर अमेरिका की गवर्नमेंट ने कुछ बाधा नहीं दी। इतना ही नहीं। किन्तु हज़ारों दर्शक फीस देकर दूर दूर से रेल द्वारा वहां उपस्थित हुए। वह स्त्री भी अपने पुत्र के अपना घर द्वार सैांप अपने इस महा साहसी काम करने के लिए मुस्तैद हुई। वह पीपे के भीतर बन्द करके प्रपात के ऊपर से डाली गई। दर्शकों के सामने पीपा बहता हुआ आया। ८३ गज़ की उँचाई से गिरते उसे कुछ ही क्षण लगे। फिर वह पानी के भीतर भँवर में घुस गया। देर तक वह ऊपर नहीं देख पड़ा। इससे यह अनुमान किया गया कि जल के बोझ से पीपा और उस स्त्री का शरीर सब चकनाचूर होगये। पर नहीं, कुछ दूर पर पीपा उतराया और पकड़ा गया। तब वह दर्शकों के सामने खोला गया। वह साहसी स्त्री मृतप्राय और निश्चेष्ट थी। डाकृरों के यत्न से वह फिर सचेत हुई और कङ्गाल से धनी हो गई।

नियाग्रा नदी जिस तल पर बहती है वह कड़े पत्थर की चट्टान है। उसके नीचे नरम घिसने वाली मिट्टी है। पानी की धारा के वेग से पत्थर तो नहीं, पर नीचे की मिट्टी गल कर बह गई है। सो जहां से जल का प्रपात नीचे गिरता है। वहां पत्थर के नीचे एक बहुत बड़ी कन्दरा हो गई है। उसके ऊपर पत्थर की चट्टान है। सामने

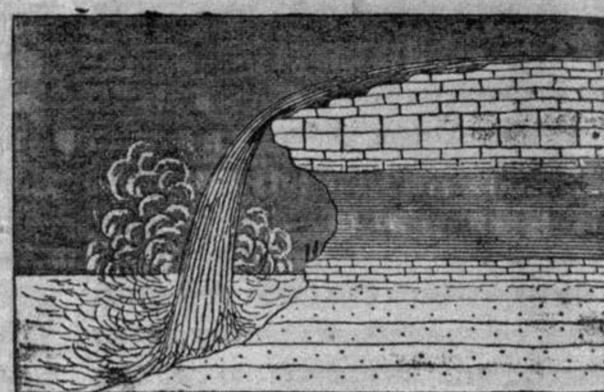

जल का भीषण स्तम्भ है। पीछे नरम मिट्टी है और नीचे कुछ कड़ी मिट्टी है।

यही गढ़ा या कन्दरा हवा की कोठरी है। इसमें पहुंचने का मार्ग सुगम नहीं है। पर संसार में अनेक विस्मयजनक कार्यों में से इसमें प्रवेश करना भी है। दर्शकों को इसके भीतर ले जाने के लिए लोग एक विलक्षण पुल बनाते हैं। इस काम में उन्हें अनेक आपत्तियां उठानी पड़ती हैं। यदि नियाग्रा का प्रपात देखने की इच्छा से कोई यात्री वहां जाय, तो इस हवा की कोठरी को बिना देखे उसकी यात्रा पूरी नहीं कही जा सकती।

यह कन्दरा प्रपात के ठीक केन्द्र में है। उसके सामने लूना और गोट नामक दो टापू है। उनके बीच में जलधारा ऊपर से गिरती है। उसी धारा में से होकर सूर्य का जो कुछ प्रकाश पहुंच सकता है, वहां पहुंचता है। यह कन्दरा किनारे पर, पानी की तरफ़, प्रायः तीस गज़ चैाड़ी है। पानी के स्तम्भ ही के कारण यह कन्दरा दृष्टि से छिपी रहती है और इसीसे इसमें प्रकाश भी कम पहुंचता है।

गोट टापू-वाले करार के ऊपर से लोग लकड़ी के शहतीर प्रपात की तरफ़ बढ़ाते हैं। इस काम में हवा बहुत बाधक होती है। क्योंकि यदि हवा टापू की तरफ़ बहती है तो वह पानी की ऐसी बौछार मारती है कि फिर काम करना असम्भव हो जाता है। गोट टापू के करार से फेन से ढकी हुई पहली चट्टान तक वे एक पुल बना लेते हैं। फिर उसी-से मिला कर दूसरी चट्टान तक वे दूसरा पुल बनाते हैं। क्रमशः इसी तरह वे पुल बढ़ाते चले जाते हैं, जब तक कि सबसे अधिक उँचाई से गिरनेवाले पानी के स्तम्भ को वे पार नहीं कर लेते। यहां पर पहुंच कर पुल बनाने वाले लूना टापू के ढालू करार की तरफ़ बढ़ते हैं। उसीपर से होकर इस हवा की कोठरी में जाने का मार्ग है। फिर, वहां से, चट्टान में खोदी हुई सीढ़ी से, लोग, प्रपात की आड़ में हवा की कोठरी के निचले धरातल पर उतर जाते हैं। यह कोठरी ३० गज़ लम्बी, २० गज़ चौड़ी और प्रायः ३० गज़ ऊंची है। इसके ऊपर नीचे चट्टान, पीछे मिट्टी का करार और सामने पानी का परदा बड़े ही भयानक शब्द के साथ हहराता है। उससे छोटे छोटे जलकण फौवारे के समान निकल कर दर्शक के शरीर और चेहरे पर पड़ते हैं। चेहरे पर उनके गिरने से बुरा नहीं लगता। शरीर पर जलकणों के पड़ने से कोई नुक़सान नहीं होता, क्योंकि, दर्शक, इस कन्दरा में प्रवेश करने के पहले, तेल-पोती (आइल क्लाथ) या चमड़े की बनी हुई पोशाक पहनते हैं। ऐसा अनुपम दृश्य संसार में अन्यत्र कहीं नहीं। प्रपात का उग्र रूप, दर्शक का उसके समीप पहुंचना, और फिर भी सुरक्षित रहना, आदि बातें दर्शक के हृदय में भय, आश्चर्य और आह्लाद का संयुक्त भाव उत्पन्न करती हैं। पानी की उड़ती हुई बौछारें, समय समय पर, प्रकाश के परिवर्तन से, स्थान स्थान पर, गोल इन्द्रधनुष के समान रंगीन देख पड़ती हैं। दिखलाने वाला आदमी दर्शकों में से एक आदमी का हाथ पकड़ कर, और दूसरे लोगों का एक हाथ दूसरे से वैसे ही पकड़ा कर, लकड़ी की गोल चक्करदार सीढ़ी पर, गिरते हुए पानी के पीछे, ऊपर चढ़ता है। उस समय यही जान पड़ता है कि अत्यन्त अद्भुत रसानुभव की पराकाष्ठा हो चुकी। इससे अधिक आश्चर्य के स्थान पर कब पहुंचना संभव है! इस यात्रा से जो भाव उत्पन्न होते हैं उनका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। दृश्य में परिवर्तन इतने शीघ्र शीघ्र होते हैं कि उनके पृथक् पृथक् संस्कार भी ध्यान देने लायक़ होते हैं। सबसे अधिक यह भाव पैदा होता है कि दर्शक, एकही काल में प्रपात के नीचे, ऊपर, बीच और पास--सर्वत्र हो आता है। उसकी बौछारों से दर्शक का शरीर और मन शीतल हो जाते हैं, शोक की बातें भूल जाती हैं, और कुछ काल के लिये उसका अन्तरात्मा तक हर्ष में मग्न हो जाता है।

इस मनोहर स्थान पर मुलाक़ात होकर बहुधा लोगों के भावी विवाह का भी सूत्रपात्र हो जाता है। दिखलानेवाले, दर्शक को इस भयानक स्थान में अकेले नहीं जाने देते। अर्थात् बिना ख़ुद साथ गये, बहुत से लोग भी क्यों न हों, उन्हें वे नहीं जाने देते। १८३४ ईसवी में पार्सन्स नामक एक मनुष्य ने अपने शरीर में रस्सी बांधी। और गेट टापू से तैरते हुए लूना टापू पर पहुंच कर इस कन्दरा में उसने उतरना चाहा। पर उसे सफलता न हुई। वह अधमरा पानी से खींचा गया। कुछ समय पीछे, उसकी निष्फलता से भी निराश न होकर, ह्वाइट नामक एक मनुष्य इस कन्दरा में पहुंचा। पहले पहल उसीने इस कन्दरा में प्रवेश किया। उसे वहां पर कई ईल नाम की मछलियां मिलीं। उसने कन्दरा के दृश्य का ऐसा अप्रतिम वर्णन किया कि साहसी लोगों ने उसमें पहुंचने के लिए एक पुलही बना डाला।

इसी प्रसङ्ग में एक बात और पाठकों के जानने योग्य यहां लिखी जाती है। वह यह है

कि नियाग्रा नदी के ऊपर से बहती हुई नाव किस प्रकार नीचे पहुंचती है। धारा से एक नहर काट दिया जाता है। उससे पानी एक हौज़ में गिरता है। उस हौज़ के नीचे एक फाटक लगा रहता है। उस फाटक में पानी धीरे धीरे गिर कर भर जाता है। तब नाव ऊपर की धारा से हौज़ में लाकर खड़ी कर दी जाती है। हौज़ का फाटक नीचे की तरफ़ खोल देने पर पानी घटने लगता है श्रौर नाव क्रमशः नीचे श्राती है। नीचे श्राने पर नाव फाटक से निकल कर एक दूसरे हौज़ में पहुंचती है। वहां से धारा का सम्बन्ध नीचे की नदी से रहता है। इससे नाव बहती हुई नीचे की नदी में चली जाती है। इस प्रकार नाव ऊपर से नीचे लाई जाती है। नीचे से ऊपर ले जाने में नाव को मल्लाह दूसरे हौज़ में रख देते हैं श्रौर पहले हौज़ में पानी गिराते हैं। बीच का फाटक वे खुला रखते हैं, पर दूसरे हौज़ का फाटक बन्द कर देते हैं। ऐसा करने से पानी दोनों हौज़ों में चढ़ने लगता है। श्रौर नाव धीरे धीरे ऊपर उठती है। जब पानी ऊपर की धारा के बराबर उठ श्राता है, तब नाव को मल्लाह उसमें ले जाते हैं।

नियाग्रा नदी के प्रपात में बहुत श्रधिक जल गिरता है। उससे बहुत कुछ कार्य भी हो सकता है। इस बात को सोच कर पाश्चात्य विद्वानों ने वहां पर पनचक्की के ऐसे तख़्ते लगाये हैं। श्रनेक बड़े बड़े तख़्ते वहां पर पानी के बोझ से घूमते हैं। उनके योग से कलें लगा कर दूर दूर के कारख़ानों में काम होता है, श्रर्थात् चक्कियां चलती हैं। उनसे कपड़ा बुनने श्रौर कागज़ वगैरह बनाने के कारख़ानों के काम (बिना भाफ की कल की सहायता श्रौर कोयले के ख़र्च के) चलते हैं। पर इतने से भी नियाग्रा की सब शक्ति ख़र्च नहीं हो जाती। शेष शक्ति बिजली में बदल कर तार द्वारा दूर दूर पहुंचाई जाने वाली है। उससे दूसरे देशों के कल कारख़ानों का भी काम चलेगा विद्वानों में सब शक्ति है। वे जो चाहें करें।

मधुमङ्गल मिश्र।

श्राँख।

[गत श्रङ्क के श्रागे]

इन्द्रियों से केवल गुणों का संवेदन होता है। किन्तु हम गुणों को स्वतन्त्र गुण नहीं कहते, किन्तु किसी पदार्थ का गुण कहते हैं। संवेदन परिवेदन में बदल जाता है, श्रर्थात् पराधीन इन्द्रियों से जाने गये गुण, कर्मेन्द्रिय से जाने परिवेदन से मिला दिये जाते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न जो उठता है, वह यह है कि जब इन्द्रिय केवल गुणों को बताते हैं तो हम उन्हें "परिवेदन से जाने हुए पदार्थ का गुण कैसे कहते हैं। लड्डू का जो दृष्टान्त श्रभी दिया जा चुका है उसमें इन्द्रियों से तो मिठास, रंग, विस्तार, गंध यही न जाने गये थे? हम "लड्डू" इस भावको कहां से ले श्राये, श्रौर लड्डू की मिठास, लड्डू की गोलाई, लड्डू का रंग, लड्डू का गन्ध कैसे कहने लग गये? यहां पर दर्शनशास्त्र श्रौर मनोविज्ञान में भेद हो जाता है। दर्शनशास्त्र तो ऊपर कहे प्रश्नों का समाधान करके इस विचार में लगता है कि वास्तव में कोई चीज़ मनके बाहर श्रौर इन्द्रियों के बनाये गुणों से पृथक है जिसमें वे सब गुण रहते हैं। मनके भिन्न कोई पदार्थ है या सब मनही की कल्पना है। इन सब गुणों ही को लड्डू कह दिया है, या लड्डू कुछ चीज़ है भी। मनोविज्ञान इस प्रश्न को नहीं उठाता। वह इसी में सन्तुष्ट है कि इन्द्रियों के बनाये गुण किसी एक पदार्थ पर कैसे जड़ दिये जाते हैं, इसकी खोज करे। मनोविज्ञान के छात्र उस प्रकार की खोज करते हैं, जिससे संवेदन (गुण) का परिवेदन (पदार्थ) होजाता है, श्रौर इस खोज को दार्शनिकों के लिए छोड़ देते हैं कि परिवेदन सच्चा है, या केवल माया ही है।

हम लोग मनोविज्ञानियों का मार्ग लेते हैं। यह जाना गया कि गुणों का पदार्थों पर श्रारोप किया जाता है। किन्तु भिन्न भिन्न मनुष्य कहीं

कहीं पर भिन्न भिन्न प्रकार का आरोप करते हैं। चाक़ू से मेरी अँगुली कट जाय, तो मैं चाक़ू में चमक और अंगुली में पीड़ा मानता हूं। सभी ऐसा करते हैं। ऐसा कोई नहीं है जो अंगुली में चमक और चाक़ू में पीड़ा मानले। यहां पर सब का आरोप एकही प्रकार का होता है। किन्तु कहीं कहीं आरोप में भेद भी होता है। गुलाब के फूल को वर्णान्ध मनुष्य पत्रों के रङ्ग का कहैगा, और मैं लाल कहूंगा। नैयायिकों के पुराने दृष्टान्त में पीलिए का रोगी शङ्ख को पीला कहैगा। यहां आरोप में भेद होगया। अवश्य ही गुलाब दोनों रङ्ग का नहीं है, और न शङ्ख दुरङ्गा है। मैंने, और दूसरे देखने वाले ने, जो अपनी अपनी ओर से आरोप किया है वह मानों गुलाब का अपनी अपनी भाषा में तर्जुमा कर लिया है। वास्तव में गुलाब पदार्थ गुलाब, है। न इस रंग का है, न उसका। अब देखना चाहिए कि पदार्थ क्या है, और कौन से इन्द्रिय से उसका ज्ञान होता है। मेरे सामने एक खम्भा है। यदि इसका रङ्ग काला न हो कर लाल होता तोभी यह खम्भा ही रहता। यदि यह लोहे का न होकर लकड़ी का होता, और बजाने से और तरह का टङ्कार सुनाता, तो भी इसके खम्भे होने में सन्देह नहीं होता। यदि इसमें तारपीन का गन्ध न आकर इत्र की ख़ुशबू आवे, तो भी इसका खम्भापना नहीं छूटेगा। यदि यह इतना मोटा, लम्बा, और गोल न दिखाई देकर, तिकोना या पतला दिखाई दे, तो भी और तरह का खम्भा कहलाएगा, किन्तु रहेगा खम्भा ही। किन्तु यदि इसमें रोधकता न हो अर्थात् यदि मैं इसमें से निकल जा सकूं, या इससे टकराने से मेरा सिर न फूटे, तो इसका नाम खम्भा नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वास्तव पदार्थ का ज्ञान कर्मण्य त्वक् से होता है, और कर्मण्य त्वक् से कर्मण्य आंख ऐसी मिली हुई है कि छुड़ाई नहीं जा सकती। पदार्थ वास्तव में रोधक और विस्तृत हैं याने पहले वे स्पृश्य और दृश्य हैं और पीछे श्रेय, स्वाद्य और पेय।

यद्यपि परिवेदन में चक्षु की ही प्रधानता है, चक्षुही परिवेदन का प्रधान तथा एक मात्र अङ्ग है, तथापि, बर्कले के मत से परिवेदन वास्तव में स्पर्श है। बिना आंख बच्चे जनमते हैं, किन्तु बिना त्वक् नहीं। बिना चक्षु के त्वक् से जगत् जाना जाता है किन्तु त्वक् के बिना चक्षुसे नहीं। अन्धे के लिए जगत् है, किन्तु त्वक् हीन के लिए नहीं। चक्षु का काम कितना ही बड़ा हो तथापि ऊपरी 'पालिश' है; नींव तो त्वक् ही डालती है। आंख रँग सकती है, गढ़ नहीं सकती। अतएव 'त्वक्' से परिज्ञान तत्व आरम्भ करना चाहिए।

विस्तार और रोध दोनो ही केवल कर्मेन्द्रिय-युक्त त्वक् से जाने जाते हैं। यह स्नायविक कर्तृता दो प्रकार की होती है;—स्वतन्त्र और रुकती हुई। पहली से विस्तार और दूसरी से रोध जाना जाता है। किन्तु यह काम ख़ाली स्नायुकाही नहीं है, त्वक् के ज्ञान से भी इस विषय में बड़ी सहायता मिलती है। हम जो कहते हैं, कि "यह पदार्थ एक दूसरे से इतने दूर हैं" सो पहले हमें दो भिन्न भिन्न स्पर्श ही मालूम देते हैं। रोध के छ प्रकार हैं—(१) (२) बोझ और दबाव। इनमें स्नायुबल की मुख्यता है। (३) (४) खरखरापन और चिकनाई। इनमें त्वक् प्रधान है। (५) (६) कठिनाई और मुलायमी। इनमें दोनो बराबर बराबर हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि कई रोध-वाले स्पर्श, एक ही काल में एकही क्रम से दोहराये जाने से, भिन्न भिन्न स्पर्श नहीं मालूम देते, किन्तु एक विस्तृत पदार्थ के रूप में जाने जाते हैं। यह अभ्यास का फल और पदार्थ-परिवेदन का मूल है। कुछ लोग "विस्तार-ज्ञान" को स्वभाव से उत्पन्न, मानते हैं। उनकी दृष्टि में यह गुण जन्म से ही उत्पन्न होता है, और विज्ञान इसकी उत्पत्ति का हेतु नहीं बता सकता। यह तो विषय को छोड़ कर भागना ही हुआ; किन्तु प्रथम मतवालों का भी समाधान ठीक नहीं। उत्तरोत्तर

एक काल में कई स्पर्श होने से समकालिकता हो सकती है, किन्तु समकालिकता विस्तार नहीं है। यह कहना कि स्नायु शक्ति से, उलटे सीधे कई स्पर्शों का भास होने से, वे अन्त में विस्तार-युक्त पदार्थ का रूप लेते हैं, बिलकुल ठीक नहीं है। पदार्थों को विस्तृत कहने के पहले हमें यह कहना चाहिए कि हमें, पदार्थ स्वयं कैसे दिखाई दिए? यद्यपि विस्तारही सब पदार्थों का साधारण गुण है, कोई पदार्थ विस्तारहीन नहीं, तो भी हमें पहले "रोध" ज्ञान का वैज्ञानिक हेतु बतलाना चाहिए। आकाश जानने के पीछे हम रोधक पदार्थों को नहीं जानते, किन्तु रोधक पदार्थों के अभाव को आकाश कहने लगते हैं। जो हमारी शक्ति को रोके वही चीज़ है और "रोकना" ही रोधकता है। रोधकता उस शक्ति से जानी जाती है जो स्पर्श के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है।

अपनी कर्तृत्व शक्ति का कुछ धुंधला आभास, उसके रुकने का ख़याल और कठोरता का कुछ भान, ही बालक के लिए पदार्थ परिवेदन की जड़ है। पहले पहल जननेन्द्रिय के स्पर्श और स्तनपान में ओठों के दबाव से ही बालक का संसार आरम्भ होता है। पहला पदार्थ जिसको वह जानेगा अपना ही देह है, क्योंकि वह कभी दूर नहीं होता और उसमें अपनी शक्ति रुकने का दृष्टान्त क्षण क्षण पर दिखाई देता है। भिन्न भिन्न त्वक् में भिन्न भिन्न रूप से स्पर्श शक्ति है, और भिन्न भिन्न अङ्गों को छूने में हाथ को भिन्न भिन्न परिश्रम होता है। इसीसे बालक अपने देह के विस्तार और भिन्न भिन्न अङ्गों को पहचानने लगता है। इसी से हम त्वक् सम्बन्धी द्वित्व जानते जानते त्वक्सम्बन्धी दूरत्व जानने लगते हैं। देह पर कम्पास के दोनों छोर रखने से हमें ख़ाली दो स्पर्श ही नहीं मालूम होते, किन्तु कुछ दूरी भी प्रतीत होती है। क्यों? इसलिए कि उन दो स्थानों पर स्पर्शों में भेद है और उनके स्पर्श के लिए हाथ चलाने की जो शक्ति है उससे हमें उन्हीं में अन्तर जान पड़ने लगता है। किसी भाग को छूने के लिए कितनी शक्ति लगती है, इससे और सुलभ-स्पर्श-यन्त्र हाथ से, देह के प्रत्येक भाग का दूसरे भाग से स्थानीय सम्बन्ध हो जाता है। इस बात में एक अपवाद भी है। यदि मध्यमा अंगुली को तर्जनी पर चढ़ाकर दोनों के बीच में कोई छोटी चीज़ रक्खी जाय, तो हमें एक विस्तृत पदार्थ वा दूरस्थ विन्दुओं का ज्ञान न होकर दो पदार्थों का ज्ञान होता है। इसका कोई समाधान नहीं। हां, तर्जनी के स्पर्श को हम ऊपर मानते हैं, और मध्यमा के को नीचे। सो तो ठीक है, क्योंकि यहां उंगलियों का क्रम बदला हुआ होने पर भी अभ्यास पहले ही क्रम का है।

कर्तृत्व से हमें जब इतना ज्ञान हो जाता है तब चेष्टा किये ही हमें विस्तारज्ञान हो जाता है। अंधेरे में मेज़ पर हाथ और हाथ पर किताब रखने से, बिना हाथ चलाये भी "मेज़" और "पुस्तक" विस्तृत अर्थात् पदार्थ जान पड़ते हैं। क्यों? इसलिए कि हम अपने हाथ का विस्तार जानते हैं और उससे "रूल" का काम लेते हैं।

स्थूलता का ज्ञान पहले पहल ओष्ठों से होता है। वह हिल सकते और स्पर्श भी कर सकते हैं। इससे वही स्थूलत्वपरिवेदन में काम आते हैं। हाथ से भी स्थूलता का ज्ञान होता है। जब अंगूठा और अंगुलियों से मिलना चाहता है, वा एक हाथ दूसरे से नहीं मिल सकता, तब हमें स्थूलता का ज्ञान होता है। पुस्तक पर हाथ के दबाव से रोध, हाथ रखकर कई स्पर्श होने देने से विस्तार, और दोनों हथेलियों के बीच पुस्तक रखने से स्थूलता का ज्ञान होता है।

इन सब ज्ञानों में आंख बड़ी सहायता देती है। त्वक् में तथा उसमें बहुत समानता है। सारे रेटिना में दर्शनेन्द्रिय और सारी त्वक् में स्पर्शेन्द्रिय व्याप्त है, किन्तु "पीतबिन्दु" और "हाथ" हो सब कुछ है। दोनों को चञ्चलता हो इन इन्द्रियों को

इतना उपयोगी बनाती है। त्वक् में हाथ बढ़कर छू लेता है, और आंख में स्नायु के द्वारा पीतबिन्दु वा ताल चाहे जिस ओर घुमाया जा सकता है। खम्भा देखते ही मैं उससे सिर क्यों नहीं टकरा देता और अन्धेरे में खम्भे को छूकर उसका आकार कैसे जान सकता हूं? पहले दृष्टान्त में मैं छूता नहीं और दूसरे में देखता नहीं। किन्तु प्रकाश में चीज़ देखने पर मुझे उसके स्पर्श का ख़याल होता है और अन्धकार में स्पर्श करने पर उसके रूप का ख़याल होता है। अतएव इन दोनों में बड़ा भारी सम्बन्ध है। आंख हमें अपनी भाषा में प्रकाश और रङ्ग तथा समधरातल और रैखिक विस्तार का ज्ञान देती है। आंख से रोध का ज्ञान नहीं होता। और इसीसे स्थूलता का ज्ञान गौण-रीति से होता है। आंख बहुत दूर देख सकती है, किन्तु इधर उधर घूमकर पदार्थों को पकड़ नहीं सकती। अतएव स्पर्श से हमें जिस विस्तार का सूत्र मिल गया है, उस पर यह भाष्य बनाती है। सो स्वयं आँख रङ्ग और प्रकाश से कुछ नहीं दिखाती, किन्तु त्वक् की बात सदा सच्ची है; आँख की बात कभी कभी धोखा दे दिया करती है। स्पर्शज्ञान ही वास्तव ज्ञान है। वास्तव विस्तार त्वक् का बताया विस्तार है। पृथ्वी का वास्तव आकार आँख से नहीं जाना जाता, किन्तु स्पर्श करने वाले पैरों की संख्या से। सूर्य हमें थाली सा दिखाई देता है, क्योंकि उसकी तुलना सारे दृश्य आकाश से होती है और आकाश की तुलना स्पृश्य पृथ्वी से होती है। अतएव स्पर्शही सूर्य को थाली सा दिखाता है। आँख केवल कुछ चिह्न बताती है जिनका अर्थ हम त्वक् के सहारे करते हैं। तारे और पहाड़ों के शिखर जो स्पर्श से दूर हैं वे भी आँख के आधीन तो हैं, किन्तु आँख दूरत्व अथवा वास्तविक सत्ता का ज्ञान नहीं उत्पन्न करती।

यह कोई न समझे कि "रेटिना" के चित्र से पदार्थों का दृश्य-विस्तार जाना जाता है। रेटिना का चित्र बहुत सूक्ष्म होता है, और उस पार्थिक सत्ता का, उसकी सहचारिणी मानसिक संवेदना से, कोई सम्बन्ध नहीं। स्पर्श से ही विस्तार जाना जाता है, क्योंकि पदार्थ दूर होने पर आँख उसका विस्तार बहुत ही छोटा देखती है।

रेटिना के चित्र के उलटे होने पर भी हमें पदार्थ सीधे क्यों दिखाई देते हैं? यह आंख के विज्ञान का एक मुख्य प्रश्न है। कुछ लोग कहते हैं कि 'उलटा' 'सीधा' यह द्वन्द्व परस्पर संबद्ध है; जहां सभी उलटा है वहां सीधा नहीं; इससे सभी पदार्थ सीधे अर्थात् एकाकार दिखाई देते हैं। किन्तु सीधा शब्द स्पर्श की भाषा का है। पदार्थ की चोटी वह है जिसे छूने के लिए हमें हाथ ऊंचा करना पड़े। वास्तव में यदि चित्र उलटा न हो तो हमें पदार्थ सीधा ही न दिखाई दे। नेत्र गोल है, इससे पदार्थ की चोटी देखती बेर छाया पीतबिन्दु के ऊपर पड़ती है, और "कार्निया" ऊँचा करने से "पीतबिन्दु" नीचे आ जाता है। यदि किरणें एक दूसरे को बिना काटे भीतर जातीं तो आँख उठाने से पीतबिन्दु नीचे हो जाता, और नीचे करने से नीचा होता। अतएव आँख से और, और स्पर्श से और ही ज्ञान होता। चोटी देखने को हमें आँख नीची करनी पड़ती और चरण देखने के लिए ऊँची!! चोटी छूने को हाथ ऊंचे करने पड़ते हैं, और चरण छूने को नीचे। इन दोनों भावों को मिलाने के लिए चित्र का उलटा होना आवश्यक है।

एक और बात विचारणीय है। हमें दो आँखों से एक पदार्थ क्यों दिखाई देता है? इसका एक उत्तर तो यह है कि यदि दो आँखों से अप्रसन्न हो तो एक आँख फोड़ डालो। आचार्य जगदीशचन्द्र बोस का सिद्धान्त है कि जब एक आँख देखती है तब दूसरी विश्राम लेती है। यह बात ठीक नहीं, कि दोनों रेटिनाओं के दोनों चित्र मिलकर एक भाव पैदा करते हैं। जिस पदार्थ को हम ताक रहे हैं उसके अतिरिक्त सब पदार्थ

वास्तव में दे। दे। हो दिखाई देते हैं। किन्तु त्वक् से उन्हें एक जान कर एक ज्ञान दृढ़ करना पड़ता है। अवश्यही सूर्य के। नहीं छू सकते; किन्तु और सब पदार्थों से अनुमान करते हैं कि वह भी एक ही है। बेन के अनुसार हम एक आँख से देखते हैं और दूसरी से उस चित्र के। पूर्ण करते हैं। ते। नेत्र होने से ही हमें स्थूलता का ज्ञान होता है। एक आँख से हमें एक तरफ़ से अधिक दीखता है और दूसरी से दूसरी तरफ से। दोनों मिलकर हमें एक उभड़ा हुआ चित्र दिखाती हैं। यही तत्व "स्टीरियोस्कोप" नामक यन्त्र में है।

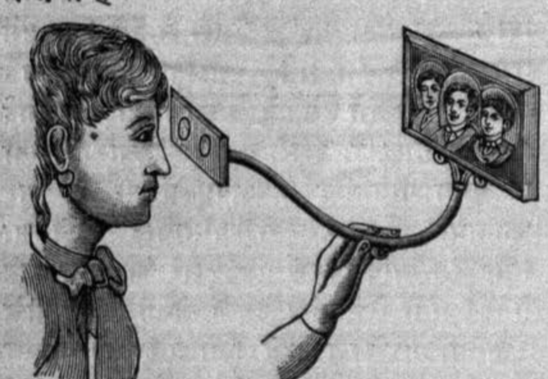

चित्र ११

स्टीरिअस्कोप

उन्नतोदर ताल के दे। टुकड़ों में दे। चित्र देखने से एक प्रतीत होता है।

यदि दे। चित्र बनाये जांय और एक में दाहनी ओर और दूसरी में बाईं ओर अधिक दिखाया जाय और यदि वे दोनों चित्र एक उन्नतोदर ताल के दे। टुकड़ों के। दोनों आँखों पर रख कर देखे जाँय ते। एक स्थूल पदार्थ का भान होता है। जैसा कि इस चित्र में दोनों फ़ोटोग्राफ़ों का एक ही फ़ोटोग्राफ़ प्रतीत होता है; और वास्तव में पदार्थ के। देखने का सा सन्देह होता है। यदि चित्रों के स्थान बदल दिये जाँय ते। उँचाई की जगह निचाई और निचाई को जगह उँचाई प्रतीत होगी। पृथक् पृथक् रङ्गों के। दोनों आँखों के सामने रखने से मिश्रित रङ्ग प्रतीत होता है। यदि दोनों चित्र समान हों ते। नया चित्र बिलकुल चिपटा होगा। इससे जाली नोट, नक़ली दस्तावेज़ आदि पकड़े जा सकते हैं। अतएव दे। नेत्रों के होने से स्थूलत्व और दूरत्व के ज्ञान में बड़ी सहायता मिलती है। एक आँख बन्द करके हम सूई नहीं पिरो सकते।

अब आँख के बारे में केवल तीन बातें कहना रह गई हैं—समीपदृष्टि, वृद्धदृष्टि, वर्णान्धता।

(१) रेटिना तथा काच की बनावट के अनुसार कई लोग समीप ते। देख सकते हैं किन्तु दूर नहीं। वे आँख के पास ले जा कर देखते हैं; और अंधेरे में अच्छा देख सकते हैं। इसका हेतु आँख के ताल का अधिक उन्नतोदर होना है। इसीलिए उनके किरणों का छायाचित्र रेटिना से कुछ इधर ही 'म४' बनता है। (चित्र १२ देखो) इससे पदार्थ

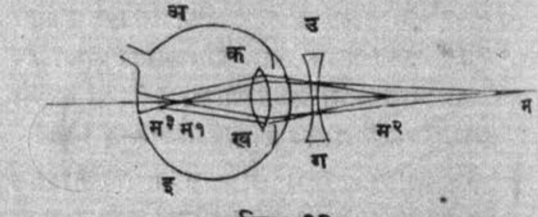

चित्र १२

समीपदृष्टि।

अ इ रेटिना। म पदार्थ। क ख नेत्र। म^{1} धुंधला चित्र। उ ग चश्मा। म^{2} पदार्थ का कल्पित स्थान। म^{3} साफ़ चित्र।

धुंधला दिखाई देता है। पदार्थ समीप लाने से 'म३' चित्र ठिकाने पर बनता है और पदार्थ दिखाई देता है। ऐसे मनुष्य कुछ आँख मूदने से, या छिद्र में होकर देखने से, अच्छा देख सकते हैं; क्योंकि उससे डेला छोटा हो जाता है और आँख में जानेवाली किरणमाला छोटी होने से किरणें ताल के। केन्द्र ही में काटती हैं और केन्द्र पर अधिक गोलाई होने से दूर अर्थात् रेटिना पर

चित्र बनाती हैं; अर्थात् अवस्था बढ़ने से आँख की गोलाई कम हो जाती है। इससे उनकी आँख उस समय सुधर जाती है जब कि औरों की आँख वृद्धदृष्टि से बिगड़ जाती है। इस रोग की वृद्धि सभ्यता की वृद्धि के साथ होती है। आफ़्रिका में किसीको यह रोग नहीं होता, किन्तु प्रकाश में काम करने से सभ्य देशों में बहुत अधिक होता है।

(२) वृद्धदृष्टि—उम्र अधिक होने से, काच की गोलाई कम होने के कारण, किरणें रेटिना पर चित्र न बनाकर उससे कुछ आगे 'म४' चित्र बनाती हैं। (चित्र १३ देखो) किन्तु पदार्थ को दूर हटाने से चित्र ठिकाने पर आ जाता है। अतएव बुड्ढे आदमी पास के पदार्थ को ज़रा दूर हटाकर देखते हैं।

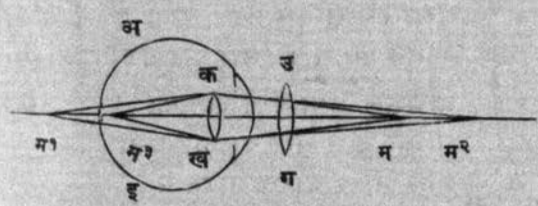

चित्र १३

वृद्धदृष्टि।

अ इ रेटिना। म पदार्थ। क ख नेत्र। म१ धुंधला चित्र। उ ग चश्मा। म२ पदार्थ का काल्पित स्थान। म३ साफ़ चित्र।

समीपदृष्टि, केन्द्रापसारक ताल आँख के सामने लगाने से, मिट जाती है। आँख से प्रवेश करने से पहले किरणें अवसर्पिणी होने के कारण आँख के ताल की अंशुनाभि हट कर 'म३' बन जाती है। वृद्धदृष्टि के लिए केन्द्राकर्षक तालों की ज़रूरत है। इससे ताल में घुसने के पहले किरणें केन्द्राकृष्ट होने से रेटिना के पार नहीं किन्तु रेटिना पर ही चित्र बनती हैं।

बहुत दिनों तक उभयनतोदर और उभय उन्नतोदर काचों ही का प्रयोग होता था; किन्तु अब उनके बदले अर्द्धचन्द्र। (उ, तथा ग, चित्र ४) काचों का प्रयोग होता है। इससे आँखें सब दिशाओं में देख सकती हैं और थकती नहीं। अतएव जिन्हें समीपदृष्टि का रोग हो उन्हें, हमारी तरह, बाल्यावस्था में ही नतोदर चशमा लगाना चाहिए जिसमें बड़ी उम्र में आँखें औरों से अच्छी हो जायँ।

(३) लोक में कहावत है कि श्रावण के अन्धे को सब कुछ हरी ही सूझती है। जो लोग नहीं देख सकते वे तो उनके समान हैं जो कुछ नहीं सुन सकते। जो लोग रङ्ग नहीं देख सकते वे उन के समान हैं जिन्हें अच्छे या बुरे राग में भेद नहीं मालूम देता। पहले सब पदार्थ एक ही रङ्ग के प्रतीत होते थे। मनुष्य जाति ने रङ्गज्ञान धीरे धीरे प्राप्त किया है। कुछ बन्दर वर्णान्ध होते हैं, अर्थात् नारङ्गी के फल और पत्तों को एक ही रङ्ग का मानते हैं। मच्छियों का वर्णपरिज्ञान तो बहुत ही कच्चा है। वे केवल उजेला, अंधेराही पहचानती हैं। अभी विलायत के एक डाकृर ने एक ऐसे मनुष्य की आँख देखी जिसको सूर्यकिरण का सप्तरङ्ग एक आँख से भूरा दिखाई देता था और दूसरी से आसमानी और लाल रङ्ग—दोनों छोर के रङ्ग—मात्र वह देखता था। बीच में सब भूरा था। मनुष्य को भी पहले पहल किनारे के दोनों रङ्ग दिखाई दिये; और बीच में केवल भूरा रङ्ग। फिर उस भूरे में क्रमशः दोनों कोनों के दोनों रङ्ग नारङ्गी और नीले दिखाई दिये। बीच की भुराई ने कुछ काल बीतने पर और दो रङ्ग प्रकट किये। सम्भव है कि हमारे वंशज हमसे अधिक रङ्ग देख सकें। हमारे पूर्वजों से हम अधिक रङ्ग देखते हैं। जो पूर्वज जितने प्राचीन हैं उनका वर्णपरिज्ञान उतना ही कम है। अजण्टा गुफाओं में चित्रों के आस पास हरी आभा बनी है जो वास्तव में गुलाबी होनी चाहिए। ऐसे ही हम पुराणों में हरे घोड़े का वर्णन पढ़ते हैं। पीत को कई पुराने मनुष्यों ने "रक्त-हरित" कहा है। 'राम' 'कृष्ण' को नवजलधर श्याम कहने का अभिप्राय भी शायद

उस समय के वर्णपरिज्ञान के अनुसार हो। वास्तव में हम भी सच्चे और वे भी सच्चे, क्योंकि अपनी अपनी आँख के अनुसार सभी रङ्ग मानते हैं। किन्तु यों नये नये रङ्ग जान कर मनुष्य ने कुछ खोया भी है। जङ्गली बहुत कम रङ्ग पहचानते हैं और उनकी दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। सातों रङ्ग और उनके अनेक सङ्कर देखनेवाले हम सभ्यगण "शार्टसाइट" (मन्द दृष्टि) से घबरा रहे हैं! सम्भव है कि रङ्गदर्शन विहीन काल में मनुष्य बहुत दूर तक देख सकता रहा हो। इन सात रङ्गों से आगे भी एक रङ्गों का सप्तक है जिसके लिए हम सब वर्णान्ध हैं। सम्भव है कभी कालान्तर में वह भी हमारे वंशजों को दिखाई देने लगे।

अस्तु, लेख के बहुत बढ़ने की क्षमा मांग कर यही कहना है कि—

* य इमां चाक्षुषीं विद्यां नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति न तस्य कुलेऽन्धो भवति इति। †

श्रीचन्द्रधर शर्म्मा ‡।

पुस्तक-परीक्षा।

शङ्करसरोज। पं० नाथूराम शङ्कर कृत। आर्य-समाज, बरौठा, पोस्ट हरदुआगञ्ज, अलीगढ़, से प्राप्य। दाम पांच आने। पुस्तक पद्य में है। विषय प्रायः धार्म्मिक और सामाजिक हैं। पुस्तक में छन्द कई तरह के प्रयुक्त हुए हैं। पर गीत (भजन) अधिक हैं। आज कल प्रतिभा का प्रायः अभाव हो रहा है। इसीसे अच्छी कविता देखने में बहुत कम आती है। परन्तु इस पुस्तक की कविता बहुत अच्छी है। इसका विषय चाहे जैसा हो, इसके भाव चाहे जैसे हों, पर कविता सरस, सरल, सार्थ और श्रुतिसुखद है।

> किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ?
> परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

पढ़ने वाले के हृदय में लग कर उसके सिर को घुमादेने का गुण इस कविता में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। कवि का सम्बन्ध आर्यसमाज से है। आर्यसमाज की कविता अकसर अच्छी नहीं होती। पर इस पुस्तक की कविता ने आर्यसमाज का नाम रख लिया। इसकी पद्य रचना का भारत की अधोगति सम्बन्धी एक नमूना सुनिए—

> वर वैदिक बोध बिलाय गयौ
> छल के बल की छवि छूट पड़ी।
> पुरुषारथ साहस मेल मिटे
> मत पन्थन के मिस फूट पड़ी॥
> अधिकार भयो परदेशिन को
> धन धाम धरा पर लूट पड़ी।
> कवि शङ्कर आरत भारत पै
> भय भूरि अचानक टूट पड़ी॥

इस पुस्तक की एक बात हमको पसन्द नहीं आई। इसमें एक छोटी सी भूमिका है। उसमें पं० नाथूराम ने अपने मुहँ अपनी बड़ाई की है। इसकी क्या ज़रूरत थी? आप कहते हैं "यदि आप (बरौठा के ठाकुर उमरावसिंह और खमान-सिंह) छपाने का भार उठा सकें तो मैं एक ऐसी भजनमाला बना दूं कि जिसकी बड़ाई सर्व-साधारण तो क्या, वरन् मुख्य मुख्य महाशय भी करैंगे"। एक जगह पर आपने "महाभ्रष्ट नीरस पद्यों के रचयिता-जन" के, "कविराज" बन बैठने पर आक्षेप किया है और अपनी प्रशंसा में लिखा है कि हमको सोने चांदी के पदक, घड़ी, पगड़ी और दुशाला आदि वर्तमान कवि-समाजों से मिले हैं और हम "कविमण्डल" में "भारतप्रज्ञेन्दु कविराज" कहलाते हैं। पर हमारी प्रार्थना है

---

* चाक्षुषोपनिषद्।

† गैनो, रावर्टसन, मैकाश, सली, बर्कली प्रभृति के आधार से लिखित। क्या हिन्दी रसिक और इन्द्रियों का भी ऐसा वर्णन पसन्द करेंगे?

‡ खुशी की बात है कि यह लेख आज पूरा होगया। —सम्पादक।

कि इस प्रकार की आत्मश्लाघा महा अश्लाघ्य काम है। कवि जी यदि कालिदास की ऐसी शालीनता दिखाते तो उनका प्रज्ञेन्दु और कविराज होना अधिक शोभा देता। आपको चाहिए था कि जिन कविमण्डलों और कविसमाजों से आपको उपहार, पुरस्कार और पदवियां मिली हैं, उनकी योग्यता और अधिकार का भी तो आप विचार कर लेते। इन मण्डलों और समाजों में कितने कविचक्रवर्ती हैं जो कविता के मर्म्म और कवियों के कर्म्म का इतना ज्ञान रखते हैं कि वे दूसरों को "कविराज" की पदवी दे सकते हैं? यद्यपि संस्कृत के कई प्राचीन कवियों ने आत्मश्लाघा की है; तथापि अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना प्रशंसनीय काम नहीं।

इस पुस्तक की भूमिका में जहां पं० नाथूराम ने औरों पर आक्षेप किया है, वहां के वाक्य-विन्यास पर यदि वे विचार करेंगे तो वहीं आपको अपनी कितनी ही भूलें देख पड़ेंगी। फिर इतनी आत्म-श्लाघा क्यों? यदि और बातों पर नहीं तो "तमारि" और "निरावर्ण" शब्दों ही पर पण्डित जी विचार कर देखें। "भारतप्रज्ञेन्दु कविराज" को शब्द-शुद्धि पर न ध्यान देना चाहिए?

❋

अवध की बेगम। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त कृत। दाम ५ आने। यह इस पुस्तक का पहला भाग है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। पुस्तक शिक्षा-प्रद और मनोरञ्जक है। बनारस के भारतजीवन प्रेस ने इसे छापा और प्रकाशित किया है। प्रेस के मैनेजर की तरफ़ से इस पुस्तक के आरम्भ में एक प्रार्थना छपी है। उसमें लिखा है। "इस पुस्तक में यदि छापे की भूलें रहगई हों और मात्राओं के टूटने से पढ़ने में असुविधा हो तो इसके लिए पाठकगण हमें क्षमा करें"। क्यों? क्षमा करने का कारण? जो पैसे ख़र्च करके किताब ले वह असुविधा क्यों सहै? "यदि" शब्द के प्रयोग से मालूम होता है कि क्षमाप्रार्थी ने इस बात के जानने की भी तकलीफ़ नहीं उठाई कि पुस्तक में सचमुच छापे की कोई भूलें हैं या नहीं। यह पुस्तक बँगला से अनुवाद की गई है।

❋

सं० १९६२ का भावी फल। पाली, मारवार के विद्यार्थी पण्डित तनसुख व्यास कृत। मूल्य चार आने। इसमें "सुभिक्ष दुर्भिक्ष का निर्णय तथा हर एक वस्तु की तेज़ी मन्दी लिखी है"।

❋

विवेकानन्द। श्रीयुक्त जगन्नाथ रावजी टुल्लु, बी० ए०, विरचित। दाम ६ आने। माननीय सर भालचन्द्र कृष्ण भाटवड़ेकर को अर्पित। पुस्तक छोटी पर जिल्द बहुत अच्छी है। भाषा मराठी है। इसमें स्वनामख्यात स्वामी विवेकानन्द की पद्यात्मक जीवनी थोड़े में दी गई है। कविता मनोहारिणी है। बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। पुस्तककर्ता को मुरुड, जंजीरा, ज़िला कुलाबा, के पते पर पत्र लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

❋

कामसूत्र की टीका। जयपुर के परलोकवासी पण्डित दुर्गाप्रसाद ने वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्रों को टीका सहित छपवाया था। इस बात को कई वर्ष हुए। इस पुस्तक के सातवें अध्याय का नाम है औपनिषदिक अधिकरण। प्रकाशन के समय उस अधिकरण की टीका उपलब्ध नहीं हुई थी। वह अब उनके पुत्र पं० केदारनाथ, संघी रोड, जयपुर, को मिली है। उसे उन्होंने छपाया है और चार आने में बेचते हैं।

❋

भ्रमरशतक। काशी-निवासी बाबू गयाप्रसाद (उपनाम वैष्णवदास) रचित। भागवत में भ्रमर गीत नामक एक प्रसङ्ग है। वह सर्वप्रसिद्ध है। एक भौंरे को कृष्ण का दूत कल्पना करके उससे ब्रजबालाओं ने अनेक प्रकार की बातें कही हैं।

इसी कथा के आधार पर यह शतक लिखा गया है। इसमें छोटे छोटे १०९ गीत हैं। कोई कोई गीत बहुत सरस और भावपूर्ण है।

❀

गोमाहात्म्य-चन्द्रिका। रतलाम निवासी श्रीयुत नारायण पोतदार कृत। मध्यम साँचे की ८४ पृष्ठ की पुस्तक है; जिल्द बंधी हुई है; ज्ञानसागर प्रेस बंबई में छपी है। इसमें गद्य-पद्यात्मक गोमाहात्म्य का वर्णन है। हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है। अतएव गायों का महात्म्य गाना और उनकी रक्षा करना यहां वालों का धर्म्म है।

❀

विचित्र स्वप्न। स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती कृत। ३२ पृष्ठ की यह एक छोटी सी पुस्तक है। एक आने में बाबू वैद्यनाथ गुप्त, गनेशगञ्ज मिरज़ापुर, इसे बेचते हैं। इसमें स्वप्न के बहाने सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक कुरीतियां दिखलाई गई हैं। पर स्वामी जी के लिखने का तर्ज़ अच्छा नहीं।

❀

रामायण की समालोचना। यह भी पूर्वोक्त सरस्वती जी की रचना है और पूर्वोक्त ही बाबू साहब के पास डेढ़ आने में मिलती है। इसमें रामचन्द्र के कई नृपोचित गुणों की आलोचना है। सबसे बड़ी बात इसमें यह कही गई है कि कैकेयी को जो आज तक लोग कुटिला और कर्कशा समझते आये हैं, और उस पर जो वे यह दोष लगाते आये हैं कि स्वार्थवश होकर उसने रामचन्द्र को वन में भिजवाया यह ठीक नहीं। स्वामीजी ने उसे "आर्य-कुल-ललनाओं के समस्तश्रेष्ठ-गुण-विभूषित माना है"। परन्तु स्वामी जी की दलीलें हमारी समझ में स्वीकार्य्य नहीं। आज कल जितनी रामायणें प्रचलित हैं, उनके कर्त्ताओं पर स्वामीजी ने जो अल्पज्ञता का दोष लगाया है, वह भी अनुचित है।

❀

रघुवंशतिलक महाकाव्य। आज कल संस्कृत की चर्चा बहुत कम है। इससे थोड़े ही पुरुष ऐसे हैं जो संस्कृत के प्राचीन काव्यों का आनन्द पा सकते हैं। तथापि और लोगों की श्रद्धा संस्कृत और संस्कृत-ग्रन्थों पर कम नहीं है। वे भी संस्कृत-साहित्य को आदर की दृष्टि से ज़रूर देखते हैं; परन्तु संस्कृत न जानने के कारण वे उससे लाभ नहीं उठा सकते। इस दशा में संस्कृत-ग्रन्थों के स्वदेश-भाषा में अनुवाद होने की बड़ी ज़रूरत है। पर इस ज़रूरत को रफ़ा करने के लिए कभी कभी ऐसे पुरुष भी अपनी कमर कस बैठते हैं जो इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं। इससे बड़ी भारी हानि होती है। क्योंकि, जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनकी श्रद्धा बुरे अनुवाद को देखकर संस्कृत से बिलकुल ही जाती रहती है। कालिदास की बराबरी कविता में कोई नहीं कर सकता। इस बात को सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु उसकी कीर्ति पर कालिमा लगाने का बहुत दिन से इस देश में उपक्रम हो रहा है। उसके यशः-शरीर में लाला सीताराम, बी० ए०, ने जो घाव किये हैं वे सूखने भी नहीं पाये थे कि "भारत प्रख्यात श्री मद् पण्डित द्विजशुक्ल गजाधर साहित्य विशारद" ने उन पर बड़ी ही निष्ठुरता से नमक छिड़का। आपने रघुवंश का पद्यात्मक अनुवाद किया है। किस लिए? "महाराज कुमार श्रीपालसिंहजी बीरेश कसमंडा नरेश अवध मंडलान्तर्गत ज़िला सीतापुर के विनोदार्थ"। यह इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपा है। परन्तु पुस्तक के अन्त में साहित्यविशारद जी ने लिखा है कि इस पुस्तक को मैंने अपने पिता की आज्ञा से लिखा है—

पितु आज्ञा आशीश वर धरि निज शीश सुधाइ।
विरच्यो निज मति अल्प सम छन्द प्रबन्ध बनाय॥

एक जगह "कसमंडा नरेश के विनोदार्थ", दूसरी जगह पिता की आज्ञा के पालनार्थ! द्विजशुक्ल

जी महाराज अपने अनुवाद की तारीफ़ इस तरह करते हैं—

ओ पूरण यह ग्रन्थ तब पाताबोभ सुग्राम।
विद्वानन के भाल को तिलक शोभ अभिराम॥

सो अब विद्वान् लोग केसर, कस्तूरी आदि का तिलक लगाना छोड़ दें। इसी पुस्तक को अपने मस्तक पर मँढ़ कर उसकी शोभा बढ़ावें। जो कवि "भारत प्रख्यात" है, अर्थात् कुमारी अन्तरीप से काश्मीर तक और त्रिपुरा से पेशावर तक जिसका नाम मशहूर हो रहा है, उसके अनुवाद को विद्वान् क्यों न सिर पर रक्खें? सरस्वती के वाचकों में से यदि किसीने साहित्यविशारद जी का नाम न सुना हो तो यह उन्हीं का अपराध है। जिसकी अनुपम कविता पर लुब्ध हो कर कलमण्डा-नरेश ने "गज ग्रामादि अनेक राजसीय प्राभूषणों" से उसे आभूषित कर दिया, वह क्यों न "भारत प्रख्यात" हो? ऐसे उद्भट कवि को अपनी कविता के आलोचन की क्या परवा? और उसकी आलोचना के लिए किसी की सिफ़ारिश की क्या ज़रूरत? पर ज़िला हरदोई में बरखेरवा के रईस ठाकुर जगन्नाथसिंह वर्म्मा ने इस पुस्तक की "सुवृहत सत्य समालोचना" के लिए हमें एक चिट्ठी लिखी है। अतएव आपकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करके हमने इसकी वृहत् तो नहीं पर सत्य आलोचना करना उचित समझा।

हम ठाकुर साहब के कहने से इसकी समालोचना किये देते हैं। हमारी समालोचना बहुत ही छोटी होगी। समालोचना के रूप में हम सिर्फ़ इतनाही कहते हैं कि इस अनुवाद में अनुवादक ने छन्दःशास्त्र, शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र और कालिदास के भावार्थ का एकदम संहार कर डाला है। इसका हम सिर्फ़ एक ही उदाहरण देंगे। लोग रघुवंश को अकसर दूसरे सर्ग से पढ़ते हैं। उसका पहला श्लोक यह है—

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच॥

अर्थात् यश ही है धन जिसका, ऐसे प्रजावर्ग के अधीश्वर राजा ने, प्रातःकाल दूध पी चुकने पर जिसका बछड़ा बाँध दिया गया है और जिसने राजा की पत्नी सुदक्षिणा के हाथ से गन्धमाल्य को स्वीकार किया है—उस ऋषि-धेनु को, वन में लेजाने के लिए, खोला। अब साहित्यविशारदजी का अनुवाद सुनिए—

निशि बसन महिपाल मणि बत्सहि दूध पिआइ।
परिक्रमा करि रानि युत छोरयो मुनिबर गाइ॥

कालिदास की कविता का अनुवाद, सो भी दोहा छन्द में, और उसमें भी छन्दोभङ्ग! कालिदास की कविता का पहले तो ठीक ठीक अनुवाद ही मुश्किल से होता है। फिर बड़े छन्द का छोटे से दोहे में होना और भी मुशकिल है। यदि दोहे में भी छन्दोभङ्ग हो और उसमें प्रयुक्त शब्द भी सार्थक न हों, तो फिर क्या पूछना है! फिर तो समझना चाहिए कि कालिदास की कविता-कामिनी का सिर उलटे छुरे से मूँड़ लिया गया!!! हम समझते थे कि पूर्वोक्त लाला साहब के ही अनुवाद ने कालिदास की कीर्ति को कलङ्कित किया है। पर साहित्यविशारद जी के अनुवाद ने तो उसे भी मात दे दिया। यह कोई न समझे कि इस अनुवाद का कुछ ही अंश ख़राब होगा; नहीं, प्रायः सारी पुस्तक की एकही सी दशा है। हमारी समझ में इस पुस्तक के लिखने, छापने, प्रकाशित करने और इसके उपलक्ष्य में उपहार देनेवाले सभी लोग कालिदास की कीर्ति को कलङ्कित करने के हिस्सेदार हैं। इसका एकमात्र प्रायश्चित्त यह है कि यह पुस्तक बिना विलम्ब के अग्निसात् कर दी जाय। प्राचीन कवियों की कीर्ति को रक्षित

रखना इस देशवालों का पवित्र कर्तव्य है। अतएव इस विषय में अनधिकारी आदमियों के अनुचित चापल्य की प्रतिबन्धकता तीव्र आलोचनाओं के द्वारा ज़रूर होनी चाहिए।

यह नोट हम लिख चुके थे कि अनुवादक जीके लोकोत्तर अनुवाद की कुछ ऐसी पंक्तियां हमारी नज़र में पड़ीं जिनको देखकर हमें अपरिमेय परिताप हुआ। रघुवंश के छठे सर्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर का वर्णन है। इस सर्ग की कविता बहुत ही अच्छी है। अज के सामने जाने के पहले, जितने राजाओं को इन्दुमती ने देखा, किसीको नहीं पसन्द किया। तब कालिदास कहते हैं—

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेन्तरं चेतसि नोपदेशः।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ॥ ६६ ॥

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ ५७॥

इसका अनुवाद साहित्यविशारद जोने किया है—

भूप विदरभा भगिनि उर कछु उपदेश न आव।
जिमि हिमकर की किरण सों सरसी लहै न चाव ॥

पति इच्छा महँ फिरत निशि दीपक शिखा समान ॥
जिहि अवनी पति कहँ तजत होत मलीन महान ॥

भगवति कविते व्यापादितासि !

मनोरञ्जक श्लोक।

(जरामाहात्म्य)

मलिनैरलकैरेतैः शुक्रत्वं प्रकटीकृतम्।
तद्रोषादिव निर्याता वदनाद्रदनावलिः ॥

इन महामलीन अलकों ने भी शुक्रत्व (सफ़ेदी) दिखलाया। इतना साहस ! इसीसे मानों सफेद दांतों को ग़ुस्सा आया और वे मुंह से गिरकर बाहर हो गये !

※

इयत्यामपि सामग्र्यां सुकृतं न कृतं त्वया।
इतीव कुपितो दन्तानन्तकः पातयत्यलम् ॥

अहो, इतनी सामग्री होने पर भी तूने कोई पुण्यजनक काम न किया ! इसीसे मानों कुपित हुए यम ने दांतों को जड़ से तोड़ गिराया !

※

वृद्धत्वानलदग्धस्य सारयौवनवस्तुनः।
दृश्यते देहगेहेषु भस्मैव पलितच्छलात् ॥

देहरूपी घर में यह जो सफ़ेदी देख पड़ रही है, वह सफ़ेद बालों की नहीं है। फिर वह किस चीज़ की है। वह भस्म की सफ़ेदी है। भस्म वहां कहां से आई ? यौवनरूपी सार (=लोहा, रसायन) वस्तु को जरारूपी अग्नि ने जला दिया है। उसी की यह भस्म है !

※

वीक्ष्यते पलितश्रेणिर्नैव वृद्धस्य मूर्धनि।
मृषैव जातं जन्मेति किन्तु भस्मविधिर्न्यधात् ॥

वृद्ध के सिर पर यह बालों की सफ़ेदी नहीं है। फिर क्या है ? तुम्हारा जन्म व्यर्थ गया, यह बतलाने के लिये ब्रह्मा ने इसके सिर पर भस्म (ख़ाक) डाली है। पद्मसिंह शर्म्मा।

National Library,
Calcutta-27.

लार्ड मिण्टो

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] अक्टोबर, १९०५ [संख्या १०

विविध विषय।

काठियावाड़ के प्रिंस रणजीतसिंह विलायत में रहते हैं। आप क्रिकेट खेलने में सर्वोपरि हैं। आस्ट्रेलिया तक में जाकर आपने विजय पाया है। इँगलैण्डवाले अपने सामने, हर बात में, इस देशवालों को कोई चीज़ नहीं समझते। पर अनेक प्रकार के विघ्न और बाधायें झेल कर कितने ही हिन्दुस्तानी इँगलैण्ड पहुँचते हैं और कठिन से कठिन परीक्षाओं में सैकड़ों अँगरेज़ों को पीछे छोड़ जाते हैं। हिन्दुस्तानियों को मौक़ा भर मिलना चाहिए। क्रिकेट अँगरेज़ी खेल है। देखिए उसमें भी रणजीतसिंह ने बड़े बड़े अँगरेज़ खिलाड़ियों को हरा दिया। अब एक दूसरे रणजीतसिंह विलायत में पैदा होना चाहते हैं। आपका नाम है पण्डित आनन्दीप्रसाद दुबे। आप कानपुर के रहनेवाले हैं; कोई दो वर्ष हुए बैरिस्टरी सीखने गये हैं। आपने भी क्रिकेट में बेढब प्रवीणता दिखलाना शुरू किया है। आप एक मशहूर क्लब के मेम्बर हुए हैं। उसमें बड़े बड़े लार्ड तक शामिल हैं। आपकी क्रिकेट-कुशलता के कारण आपका बड़ा नाम हो रहा है।

सम्भव है, कुछ दिनों में, इस खेल में, आप रणजीतसिंह के समकक्ष हो जायँ।

क्रिकेट के मशहूर खिलाड़ी पूर्वोक्त रणजीत-सिंह ने क्रिकेट पर एक किताब अँगरेज़ी में लिखी है। उसका नाम है "जुबिली बुक आफ़ क्रिकेट"। उसकी बिक्री से आपको ७,००० पौण्ड की आमदनी हुई है। सात हज़ार पौण्ड के होते हैं एक लाख पाँच हज़ार रुपये! एक छोटी सी किताब; सो भी खेल कूद की। उसकी बिक्री से लाखों रुपये की आमदनी! विलायत में नाम ख़ूब बिकता है और पढ़नेवाले भी थोड़े नहीं हैं। वहां 'सन' (Sun) नाम का एक अख़बार है। उसने अपनी एक संख्या रणजीतसिंह से लिखवाकर प्रकाशित की। और इस काम के लिए उसने उन्हें दिया क्या? कोई पाँच हज़ार रुपये!

***

सरस्वती की इस वर्ष की छठी संख्या में डाकृर ग्रियर्सन की पूर्वी हिन्दी के दो एक नमूनों की आलोचना प्रकाशित हुई। डाकृर साहब ने इस आलोचना को पढ़ कर एक पत्र लिखा और नमूनों के दोषों को दूर कर देने का वचन दिया। यह आपकी महानुभावता है।

परन्तु गत जुलाई की संख्या में प्रकाशित पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी की राय को डाकृर साहब नहीं मानते। आप लिखते हैं—

"The story was told in the Jewish country, in which country सुअर पालना मना है। In the story it is not stated that the "bhalá ádmi" was the owner of pigs. He was the owner of the fields in which the pigs fed."

अर्थात् यह कहानी पहले पहल यहूदियों के देश में कही गई थी। वहां सुअर पालना मना है। कहानी में यह नहीं लिखा कि सुअरों का मालिक भला आदमी था। वह खेतों का मालिक था, जिनमें सुअर चरते थे।

हमने, उत्तर में, डाकृर साहब से प्रार्थना की है कि शायद आपने "चराना" क्रिया का अर्थ ठीक ठीक नहीं समझा। जानवरों को चराता, या अपने आदमियों को उन्हें चराने भेजता, वही है जो उनका मालिक होता है। सुअर चराने की कहानी बाइबिल से ली गई है। इस पर एक नोट सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो चुका है। जिस मूल अँगरेज़ी-वाक्य में "चराना" है वह यों है—

"And he went and joined himself to a citizen of that country; and he sent him into his fields to feed swine."

इससे तो यह नहीं सूचित होता कि सुअरों का मालिक वह "भला आदमी" न था। अकाल पड़ रहा था। लोग भूखों मर रहे थे। यदि सुअर इस शहरवाले के न होते तो वह अपने आदमी को उन्हें चराने क्यों भेजता? जिसके खेत में सुअर जाते हैं वह उन्हें चराता नहीं, फ़ौरन निकाल बाहर करता है। हां, यदि, खेत में कोई फ़सल न हो, तो निकालने की ज़रूरत नहीं। यदि खेत का मालिक सुअरवाला ही हो तो वह उनको चरा सकता है। ग़ैर आदमी उनके चारा पानी का प्रबन्ध क्यों करेगा? "चराना" शब्द ही ऐसा है जिसके अर्थ में "स्वामित्व" का अर्थ गर्भित है। फिर "Citizen" का अर्थ "नागरिक" या "नगरवासी" हो सकता है; "भलामानस" नहीं। भलेमानुस का सुअरों से तअल्लुक़ बतलाना और भी बुरा हुआ।

यहूदी लोग सुअर नहीं पालते। यह सच है। पर ये सुअर किसी और देशवाले ने पाले थे, जहां वह लड़का अपने देश से जाकर रहा था।

हमने डाकृर साहब से विनय किया है कि यदि इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति छपे तो उसमें यह बात लिख दी जाय कि यह कहानी कहां से ली गई है।

***

सैयद अल्ताफ़ हुसैन हाली उर्दू के बहुत बड़े कवि और लेखक हैं। उनका इस समय उर्दू के साहित्य-संसार में बड़ा नाम है। उर्दू जाननेवाले सरस्वती के पाठकों ने उनकी कविता का स्वाद

लिया होगा। उर्दू न जाननेवालों को हाली साहब की कविता का नमूना दिखलाने के लिए पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा ने, जालन्धर से, उनकी एक कविता भेजी है। उसका विषय है—"नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम"। उसे हम इस अङ्क में प्रकाशित करते हैं।

***

आज कल के चिकित्सा-शास्त्र-विशारद डाक्टरों ने यह सिद्धान्त निकाला है कि मौसमी बुख़ार मच्छरों के काटने से पैदा होता है। मच्छरों के दंश में एक प्रकार का विष रहता है। वही बुख़ार पैदा करता है। लङ्का के गवर्नर सर हेनरी ब्लेक ने एक ऐसे संस्कृत-ग्रन्थ का पता लगाया है जो इस सिद्धान्त को दृढ़ करता है। इस ग्रन्थ को बने १४०० वर्ष हुए। इसमें ७० प्रकार के मच्छरों का उल्लेख है। इसके कर्त्ता का मत है कि इनके काटने से बुख़ार आता है। इनमें से ४० प्रकार के मच्छर लङ्का में पहचाने गये हैं। मच्छरों के जो लक्षण इस पुस्तक में हैं, वे इन ४० प्रकारों में अच्छी तरह घटित होते हैं। इस पुस्तक का अँगरेज़ी-अनुवाद इँगलैण्ड की चिकित्सक-मण्डली के पास भेजा गया है। इँगलैण्ड और लङ्का में इस बात की अब जाँच हो रही है कि इस पुस्तक में कही गई बातें कहां तक सच हैं।

***

गत जुलाई में बनारस की नागरीप्रचारिणी-सभा का सालाना जलसा था। उसमें सभा के मन्त्री साहब ने एक रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। यह रिपोर्टरूपी पुस्तक छपकर अब प्रकाशित हुई है। इसकी समालोचना "हिन्दोस्थान" में प्रकाशित हुए कई दिन हुए। अब यह सभासदों को भी बाँट दी गई है। एक कापी हमें भी इसकी मिली है। इसमें सरस्वती की समालोचना इस प्रकार हुई है—

"मासिकपत्रों में अब सबसे श्रेष्ठ 'सरस्वती' है। यद्यपि कई कारणों से अब इस पत्रिका के साथ इस सभा का कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सभा उस पत्रिका की उन्नति देखकर प्रसन्न होती है। सरस्वती में सब प्रकार के लोगों की रुचि के अनुसार सरल भाषा में लेखों के रहने से उसका आदर दिनों दिन बढ़ता जाता है। सभा को दुःख है कि सरस्वती के प्रकाशक ने उसमें अपवादपूर्ण लेखों का रोकना उचित न जान कर सभा से अपना सम्बन्ध तोड़ना उचित समझा"।

सरस्वती की उन्नति देखकर यदि सभा सचमुचही प्रसन्न हुई है तो सरस्वती सभा के सम्मुख अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करती है। मन्त्री साहब पहले तो यह कहते हैं कि "कई कारणों" से सभा और सरस्वती का सम्बन्ध टूट गया है—अर्थात् सम्बन्ध-विघात के एक नहीं अनेक कारण हैं; पर आगे चलकर आप अपवादपूर्ण लेखों के छपने को न रोकनाही उसका कारण बतलाते हैं। पूर्वापर विचार किये बिना ही शायद शीघ्रता में आपने एक की जगह अनेक कारण बतला दिये।

सभा के इस आक्षेप का उत्तर, स्वाधीनता की भूमिका में, पहले ही दिया जा चुका है। आशा है, सभा ने उसे पढ़ भी लिया होगा। किसी सभा या समाज के कामों की समालोचना करना अपवाद लगाना नहीं कहलाता। अपवाद का अर्थ है निन्दा। यदि समालोचना का अर्थ निन्दा है, तो हम सभा पर यह अपवाद लगाते हैं कि उसने, उस साल, हिन्दी अख़बारों के सम्पादकों की व्यर्थ निन्दा की। सभा के काम की हमने सिर्फ़ समालोचना की है; निन्दा नहीं। अपवाद और आलोचना का अन्तर समझाने के लिए सभा के एक काम की हम एक और छोटी सी आलोचना किये देते हैं—

सभा ने निश्चय किया है कि एक आदमी पहले सिर्फ़ इस बात का पता लगाने के लिए भेजा जाय कि कहां कहां हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकें हैं। फिर एक योग्य आदमी उनकी नोटिसें लिखने के लिए भेजा जाय। परन्तु, अभी कुछ समय हुआ, जिन महाशय को सभा ने बुंदेलखण्ड इसलिए

भेजा था कि वे सिर्फ़ पुस्तकों का पता लगावैं, वही कितनीही पुस्तकों की नोटिसैं ले लाये। यह क्यों? प्रमाणस्वरूप हमने स्वयं दो तीन पुस्तकों को नोटिसैं इन महाशय को अपने यहां से दीं। क्या सभा ने इन सब नोटिसों को मंज़ूर किया? यदि हां, तो योग्यता-अयोग्यता का विचार कहां गया? दो आदमियों को भेजने के निश्चय का क्या हुआ? और एक की जगह व्यर्थ दो आदमियों को रखने की क्यों ज़रूरत पड़ी? यदि नोटिसैं मंज़ूर नहीं की गईं तो वे क्या हुईं और बिला हुक्म क्यों लाई गईं? इस काम के लिए दो आदमियों के भेजने का ज़िकर सभा की इस रिपोर्ट के आठवें पृष्ठ पर भी है।

क्या यह भी अपवाद है? यदि है, तो सभा कृपा करके अपवाद और आलोचना का अन्तर समझावे।

***

सरस्वती के पाठक जानते होंगे कि क्रिश्चियन लोगों के पूज्य पैग़म्बर हज़रत ईसा (क्राइस्ट) को यहूदियों ने सूली पर चढ़ा दिया था। उन्होंने एक लकड़ी के एक सिरे को ऊपर की तरफ़ करके दूसरे सिरे को ज़मीन में गाड़ दिया था। उसके ऊपरी सिरे पर उन्होंने एक आड़ी लकड़ी लगा दी थी। उस आड़ी लकड़ी के ऊपर ईसा का एक हाथ एक तरफ़ कीलों से जड़ दिया गया था और दूसरा हाथ दूसरी तरफ़। उसी तरह उन्होंने उनके पैर सीधी गड़ी हुई लकड़ी पर रखकर कीलैं ठोक दी थीं। इसी तरकीब से उनकी प्राण-हत्या की गई थी। इस दृश्य का चित्र हम इस संख्या के साथ प्रकाशित करते हैं।

***

हम देखते हैं, कुछ "साहित्यसेवी" जनों ने सरस्वती पर विशेष रूप से कृपा करना शुरू किया है। वे—विशेष करके उर्दू-मासिकपत्रों के सम्पादक—सरस्वती के लेख चुपचाप नक़ल कर लेते हैं, पर उसका नाम देने में अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं। एक महाशय ने तो सरस्वती की कई कवितायें अपनी एक स्कूली किताब में छाप दीं; पर सरस्वती का नाम देना आप भूल गये। आप ने कुछ पंक्तियों का अङ्ग भङ्ग तक कर डाला। इसलिए, कि वे लड़कियों के पढ़ने लायक़ हो जायँ। ऐसा करने में आपने छन्दःशास्त्र के कलेजे में बड़ी ही निर्दयता से छुरी घुसेड़ी। शायद हमैं आप के विषय में कोई स्वतन्त्र लेख लिखना पड़ै। हम इस विषय में अभी तक चुप थे; पर चुप रहने से लोगों की बुरी आदत छूटती नहीं देख पड़ती। मार्च १९०५ की सरस्वती में "जापान में स्त्री-शिक्षा" नामक एक छोटा सा लेख निकला था। उसे "चाँद-सूरज" साहब ने अपने जुलाई और अगस्त के संख्या-युग्म में, कहीं कहीं पर हिन्दी शब्दों की जगह उर्दू शब्द रख कर, और अख़ीर में पांच सात सतरैं अपनी तरफ़ से लिखकर, पूरा नक़ल कर लिया। लेख के अन्त में आपने "ॐशम्" लिखकर फ़ुरसत पाई। गोया "ॐशम्" से हो वह लेख निकला हो। "चाँद-सूरज" साहब, सात आठ महीने से, क़ायमगञ्ज (ज़िला फ़र्रुख़ाबाद) से, उर्दू में, हर महीने निकलते हैं। आपके "अडीटर" हैं "मुंशी लालता परशादजी"। मुंशी जी को ऐसा न चाहिए।

लार्ड कर्ज़न—लार्ड मिण्टो।

लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर से नहीं बनी। लार्ड किचनर ने फ़ौजी सुधार करना चाहा। लार्ड कर्ज़न ने सुधार का विरोध किया। झगड़ा बढ़ा। उसमें जङ्गीलाट की जीत हुई। चाहिए था कि लार्ड कर्ज़न तभी इस्तेफ़ा देकर अलग हो जाते। पर

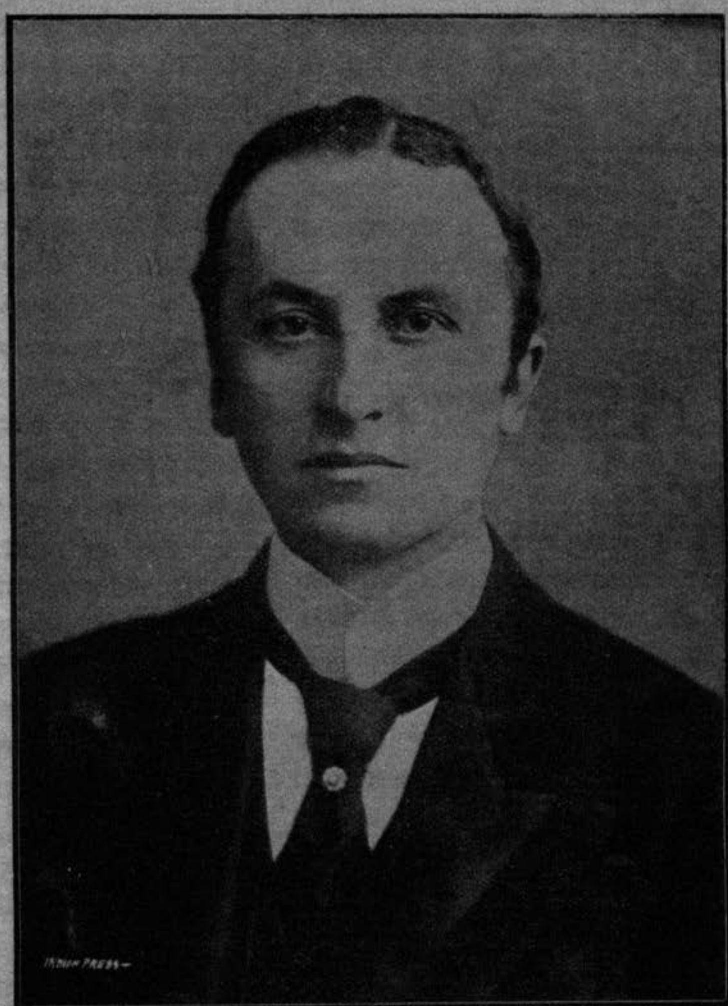

लार्ड कर्ज़न

आपने वैसा नहीं किया। आपने चाहा कि जङ्गी-लाट के सुधार के प्रस्ताव में कुछ संशोधन हो जायँ। संशोधन मंज़ूर हुए, पर पूरे तौर पर नहीं। ख़ैर, बड़े लाट ने जङ्गी लाट के प्रस्तावों के अनुसार फ़ौजी महकमे के उद्धार में योग देना क़बूल कर लिया। पर आपने एक ऐसे अफ़सर को अपनी मदद के लिए माँगा जो इस फ़ौजी संशोधन के ख़िलाफ़ था। इस कारण विलायत से उसके लिए मंज़ूरी न मिली। इस पर लार्ड कर्ज़न ने ख़फ़ा होकर इस्तेफ़ा दे दिया। आपके और स्टेट सेक्रेटरी के दरमियान, इस विषय में, जो लिखा पढ़ी हुई, वह बहुत ही कटु है। उससे बढ़कर विषाक्त वह लिखा पढ़ी है जिसमें लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर ने परस्पर एक दूसरे की बातों की समालोचना की है। गवर्नमेण्ट के इतने बड़े अधिकारियों के दरमियान ऐसा तीव्र वाद-प्रतिवाद शायदही और कभी हुआ हो। लोगों की राय है कि लार्ड कर्ज़न का पक्ष ठीक है, किचनर का ठीक नहीं। जिस तरह का फ़ौजी संशोधन विलायती गवर्नमेण्ट ने लार्ड किचनर के कहने से मंज़ूर किया है, उसमें जङ्गी लाट का प्रभुत्व और फ़ौजी ख़र्च दोनों बढ़ जायँगे।

हिन्दुस्तानियों की दृष्टि में लार्ड कर्ज़न ने, अपने समय में, जितने बुरे और भले काम किये हैं, उनका हिसाब इस तरह है—

भले।

(१) योरोपियनों के हाथ या लात से हिन्दुस्तानियों की मृत्यु, या उन पर होनेवाले हमलों, को रोकने का प्रबन्ध।

(२) व्यापार और कल कारख़ाना आदि के सम्बन्ध में अलग एक महकमे की स्थापना।

(३) पूसा में कृषिविद्या-विषयक कालेज।

(४) नमक पर सरकारी महसूल का कम कर देना।

(५) पाँच सौ की जगह हज़ार रुपये और उससे अधिक आमदनी पर टैक्स (टिकट) लगाना।

(६) जो गोरी फ़ौज बोरों से लड़ने के लिए अफ़रीक़ा भेजी गई थी, उसका ख़र्च इँगलैण्ड से दिलाये जाने के लिए लड़ना।

(७) गोरी फ़ौज की तनख़्वाह बढ़ाकर एक करोड़ से भी अधिक रुपये का ख़र्च हिन्दुस्तान पर लादने के विलायती प्रस्ताव का विरोध करना।

(८) लार्ड किचनर के फ़ौजी-प्रभुत्व-वर्द्धक प्रस्ताव को रोकने की चेष्टा करना।

(९) प्राचीन स्थानों और इमारतों को नष्ट होने से बचाना।

(१०) रेल में तीसरे दरजे के मुसाफ़िरों के आराम की तरफ़ ध्यान देना।

बुरे।

(१) कलकत्ते के म्युनिसिपल महकमे में स्वदेशी स्वाधीनता का नाश।

(२) गवर्नमेण्ट की लगान-सम्बन्धिनी अनुदार नीति का अनुमोदन।

(३) यूनिवर्सिटी-सम्बन्धी नया क़ानून बनाकर सिनेट में सरकारी अफ़सरों की प्रधानता।

(४) गवर्नमेण्ट की गुप्त बातों को न ज़ाहिर करने के विषय का क़ानून।

(५) प्रतियोगी परीक्षाओं को उठा देना।

(६) अफ़सरों की सिफ़ारिश ही पर हिन्दुस्तानियों को प्रबन्ध और न्याय-विभाग में नौकरी देना।

(७) महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का बुरा अर्थ करना।

(८) गोरे और काले चमड़े को देखकर नौकरी देने का नियम करना।

(९) तिब्बत पर अनावश्यक चढ़ाई करके प्रजा का रुपया व्यर्थ बरबाद करना।

(१०) बरार को निज़ाम से हमेशा के लिए ले लेना।

(११) दो एक हिन्दुस्तानी राजाओं के साथ अनुचित बर्ताव करना।

(१२) देहली-दरबार में व्यर्थ रुपया फूँकना और अपनी शान को सबसे अधिक बढ़ कर दिखलाना।

(१३) कलकत्ते में अपनी "कनवोकेशन" वाली वक्तृता में हिन्दुस्तानियों पर अनुचित इलज़ाम लगाना।

(१४) बंगाल के दो टुकड़े करके बङ्गवासियों के जातीय बल को कम कर देना।

लार्ड कर्ज़न के इस पिछले काम ने बङ्गालियों को बहुतही क्षुब्ध कर दिया है। जब आपके इस्तेफ़े की ख़बर कलकत्ते में पहुँची, तब बङ्गालियों ने ख़ुशी के आवेश में रोशनी करने का इरादा किया। परन्तु कुछ समझदार आदमियों ने इस बात को पसन्द न किया। इससे रोशनी रुक गई। लार्ड कर्ज़न के इस काम ने देश में—विशेष करके बङ्गाल में—स्वदेशी चीज़ों ही को काम में लाने का जोश पैदा कर दिया है। यदि यह जोश जग जाय तो बहुत अच्छा हो और इसका सारा पुण्य लार्ड कर्ज़न ही के हिस्से में आवै। सच कहते हैं, कभी कभी बुराई से भी भलाई होती है।

नवम्बर के मध्य में लार्ड कर्ज़न जाते हैं। आपकी जगह लार्ड मिण्टो आते हैं। इनके पूर्वज एक दफ़ा, १८०७-१८१३ ई० तक, यहां गवर्नर जनरल रह चुके हैं। उनके पहले लार्ड वेलस्ली यहां गवर्नर जनरल थे। उन्होंने अपने कई एक कामों से प्रजा को अप्रसन्न किया था। कई बखेड़े उठ खड़े हुए थे। उनको लार्ड मिण्टो ने आ कर शान्त किया था। आपकी गवर्नर जनरली से प्रजा बहुत प्रसन्न रही थी। यह समय भी कुछ वैसाही है। लार्ड कर्ज़न ने भी बहुत से काम प्रजा की मरज़ी के ख़िलाफ़ किये हैं। इस कारण प्रजा आपसे प्रसन्न नहीं है। आशा है अपने पूर्वज लार्ड मिण्टो की तरह नये लार्ड मिण्टो भी इस देश के शासन में उदारता दिखला कर प्रजा के दुःखों को भुला देने की चेष्टा करेंगे।

जब लार्ड कर्ज़न ने लार्ड किचनर के जङ्गी-प्रस्ताव का विरोध किया तभी विलायती मन्त्रि-मण्डल ने अनुमान कर लिया था कि शायद लार्ड कर्ज़न इस्तेफा दे दें। इस कारण लार्ड मिण्टो, सुनते हैं, पहले ही से हिन्दुस्तान आने के लिए तैयार कर रक्खे गये थे। आप लार्ड होकर वीर पुरुष हैं। आपको जङ्गी काम और जङ्गी महकमे का बहुत कुछ अनुभव है। आपने लड़ाई के मैदान में भी बहादुरी दिखलाई है और ६ वर्ष तक कनाडा की गवर्नर जनरली भी बड़ी योग्यता से की है। आप जङ्गीलाट लार्ड किचनर के काम काज को अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसीलिए हिन्दुस्तान की गवर्नर जनरली पर आपकी योजना हुई है।

लार्ड मिण्टो का ख़िताब अर्ल है। आप पुराने लार्ड मिण्टो की चौथी पीढ़ी में हैं। आपका पूरा नाम है गिल्बर्ट जान इलियट अर्ल आफ़ मिण्टो। इस समय आपकी उमर कुछ कम ६० वर्ष की है। आप ट्रिनिटी कालेज के बी० ए० हैं। आपको लिखने पढ़ने से भी बहुत शौक़ है। आपके छोटे भाई "एडिनबरा रेव्यू" नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र के सम्पादक हैं। उसमें, और कभी कभी और पत्रों में भी, लार्ड मिण्टो भी लेख दिया करते हैं।

लार्ड मिण्टो १८६७ ईसवी में "स्काट गार्ड्स" नामक सेना में भरती हुए। उसमें आप तीन वर्ष तक रहे। फिर आप "रिज़र्व" में चले आये। १८७९ ईसवी में आप अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई में शामिल थे। १८८१ में आप अफ़रीक़ा के केप कालोनी में लार्ड राबर्ट्स के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उस समय वहां भी लड़ाई जारी थी। १८८२ में आप अपनी तरफ़ से मिश्र की लड़ाई में गये

थे और वहां घायल हुए थे। जिस समय कनाडा में लार्ड लैंसडैान गवर्नर जेनरल थे, उस समय, १८८३ से ८५ तक, आप उनके युद्धमन्त्री थे। १८९८ में लार्ड मिण्टो कनाडा के गवर्नर जनरल हुए। इस पद पर आप गत वर्ष तक रहे। आपके शासन से कनाडा वाले बहुत प्रसन्न रहे। आपने वहां कई एक काम प्रजा के हित के किये। चलते समय आपका बड़ा सम्मान हुआ। आपको मछली मारने और शिकार खेलने का बड़ा शौक है। लड़कपन में आप दौड़ते भी ख़ूब थे और घुड़-दौड़ में भी शामिल होते थे। एक बार दौड़ने में आप के चोट भी आगई थी। आपका महल बहुत अच्छा और ख़ूब सजा हुआ है। आप ही के वक़्त में युवराज प्रिंस आफ़ वेल्स कनाडा पधारे थे। आपने प्रिंस के आदरातिथ्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। आपही के समय में यहां भी युवराज का आगमन होगा। आपकी लेडी साहबा ने युवराज के आदर-सत्कार के सम्बन्ध में कनाडा में आपकी बड़ी सहायता की थी। लेडी मिण्टो को, सुनते हैं, प्रजा के सुख दुःख का ख़ूब ख़याल है। कनाडा में कुछ जगहें ऐसी थीं जहां बीमारों के दवा पानी का कोई प्रबन्ध न था। लेडी मिण्टो ने चन्दा करके वहां अस्पताल बनवा दिये और बीमारों की सेवा शुश्रूषा का भी प्रबन्ध कर दिया। लेडी साहबा स्केटिंग नाम का अँगरेज़ी खेल (बर्फ़ से जमी हुई नदियों पर) अच्छा खेलती हैं।

कनाडा की गवर्नरी को छोड़कर लार्ड मिण्टो का सम्बन्ध आज तक जंगी कामों से ही रहा है। लार्ड हार्डिंग के बाद आपही एक ऐसे गवर्नर जनरल यहां आते हैं जो जङ्गी काम पर रहे हों। लार्ड किचनर भी जङ्गी; लार्ड मिण्टो भी जङ्गी। कुशलमस्तु।

महाकवि भारवि का शरद्वर्णन।

[सानुवाद]

[१]

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां
　　नदीरनौद्धत्यमपङ्कतां मही।
नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं
　　तिरोहितं प्रेम घनागमश्रियः॥

✲

महि अपङ्किल, मन्द नदी सभी,
　　सुखद हैं पकि खेत सुहावने।
नव शरद्दतु ने बरसात का
　　ढक दिया अब प्रेम समूल हो॥

[२]

पतन्ति नास्मिन् विशदाः पतत्रिणो
　　धृतेन्द्रचापा न पयोदपंक्तयः।
तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां
　　न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्॥

✲

न उड़ती अब है बकमालिका,
　　न घन इन्द्रशरासनशोभित।
तदपि व्योम महा रमणीय है;
　　न चहता गुण कृत्रिम, रम्य है॥

[३]

विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरै-
　　श्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः।
इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये
　　न दिग्वधूनां कृशता न राजते॥

✲

रहित विद्युतकञ्चनहार से,
　　मलिनतायुत पाण्डुपयोधरा
यह घनर्तु वियोगव्यथा-भरी
　　कृश हुई, पर है प्रिय, दिग्वधू॥

[४]

विहाय वाञ्छामुदिते मदात्यया-
दरक्तकण्ठस्य रुते शिखण्डिनः ।
श्रुतिः श्रयत्युन्मदहंसनिस्वनं
गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवाः ॥

✵

गत हुआ मदगर्व मयूर का;
न रव रोचक है उसका अब ।
अब मनोहर है ध्वनि हँस की ;
सु-गुणही प्रिय है, न चिरस्थिति ॥

[५]

अमी पृथुस्तम्बभृतः पिशङ्गतां
गता विपाकेन फलस्य शालयः ।
विकासिवप्राम्भसि गन्धसूचितं
नमन्ति निघ्रातुमिवासितोत्पलम् ॥

✵

अलघु गुच्छ भरे, परिपाक से
प्रचुर पीत हुए, शुचि शालि ये ।
झुक रहे जल भीतर हैं मनौं
जलज-सैारभ के अभिलाष से ॥

[६]

मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषा
विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया ।
पयः स्फुरच्छालिशिखापिशङ्गितं
द्रुतं धनुःखण्डमिवाहिविद्विषः ॥

✵

कमलिनी-सरसीरुह-शालि की
सुछवि से जल शोभित है महा ।
हरित-लोहित-पीत बना मनौं
द्रव हुवा धनु-खण्ड सुरेश का ॥

[७]

विपांडु संव्यानमिवानिलोद्धतं
निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः ।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः
सपुष्पहासा वनराजियोषितः ॥

✵

सित, मनोहर, सप्त पलाश का
पवन से उड़ता रज वस्त्रवत् ।
कुसुमहासवती शुचिबाण*दृग
विपिनराजितिया अब रोकतीं ॥

[८]

अदीपितं वैद्युतजातवेदसा
सिताम्बुदच्छेदतिरोहितातपम् ।
ततान्तरं सान्तरवारिसीकरैः
शिवन्नभोवर्त्म सरोजवायुभिः ॥

✵

न चपलामय अग्नि वहां अब ;
सित-पयोद-निवारित-आतप ।
लघुफुहार, सरोज समीर, से
गगन-मार्ग हुवा सुखकारक ॥

[९]

सितच्छदानामपदिश्य धावतां
रुतैरमीषां ग्रथिताः पतत्रिणाम् ।
प्रकुर्वते वारिदरोधनिर्गताः
परस्परालापमिवामला दिशः ॥

✵

अति मनोरम दृश्य विलोक ये
रुचिर-सारस-आनन से मनौं ।
विगत-वारिद-बन्ध दिशावधू
कुशल आपस में सब पूछतीं ॥

[१०]

विहार † भूमेरभिघोषमुत्सुकाः
शरीरजेभ्यश्च्युतयूथपङ्क्तयः ।

---

* बाण, अर्थात् नील पुष्पविशेष और शर ।

† विहार के स्थान [चरने की भूमि] से ही बच्चों के निमित्त उपायन लाया जाता है ।

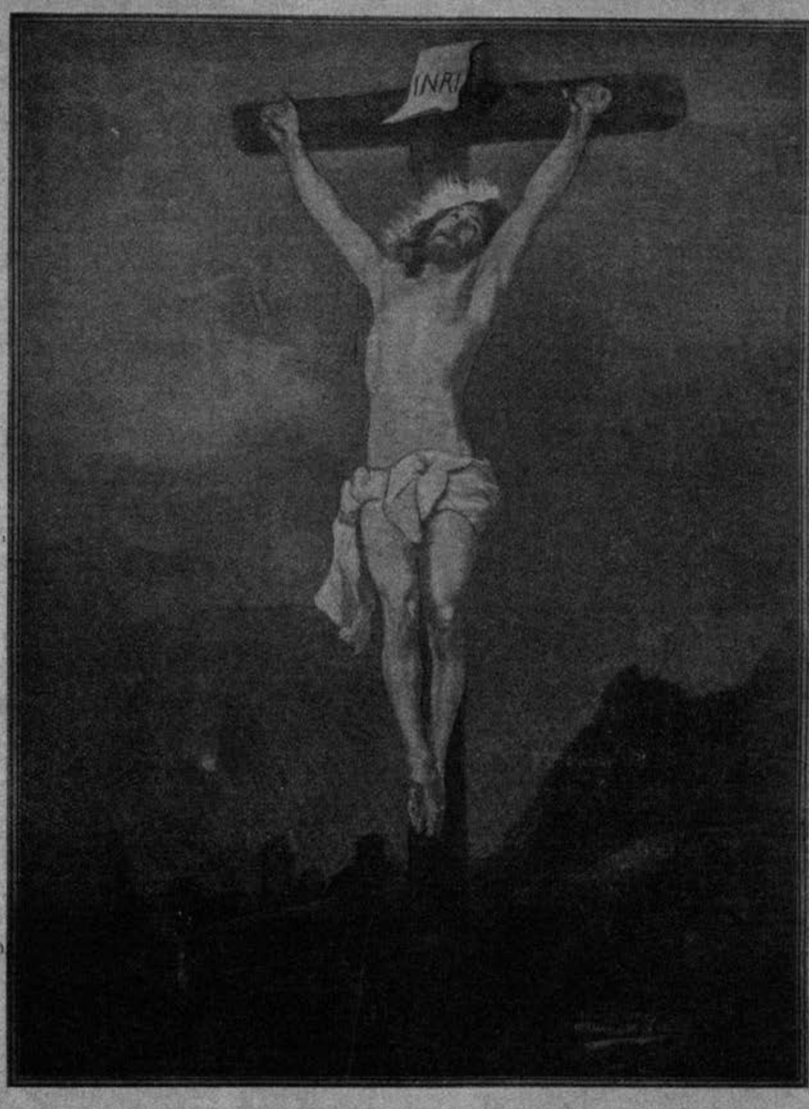

क्राइस्ट का सूली पर चढ़ाया जाना।

[ग्राफ़िक पत्र से लिया गया]

असक्तमूर्धांसि पयः क्षरन्त्यमू—
रुपायनानीव नयन्ति धेनवः ॥

✼

अलग हो कर के निजयूथ से
तज विहारमही पय छोड़तीं ।
घर चलीं सुरभी, मनु लेचलीं,
प्रिय उपायन वत्सहितार्थ ये ॥

[११]

जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी
व्रजोपकण्ठं तनयैरुपेयुषी ।
द्युतिं समग्रां समितिर्गवामसा-
वुपैति मन्त्रैरिव संहिताहुतिः ॥

✼

जगत की जननी जगपावनी
सुरभिपंक्ति सवत्स सु-शोभती ।
जगत की जननी जगपावनी
विशद आहुति ज्यों मिल मन्त्र से ॥

[१२]

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ
सुरक्तगोपीजनगीतनिस्वने ।
इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं
न शस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥

✼

षड़ज के स्वर में वर-गीत जो
नवल गोप वधूजन गा रहीं ।
सुन उन्हें अति मात्र क्षुधातुर
हरिणयूथ नहीं चरते तृण ॥

[१३]

असावनास्थापरयावधीरितः
सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि ।
उपैति शुष्यन् कलमः सहाम्भसा
मनोभुवातप्त इवाभिपाण्डुताम् ॥

✼

कलम* नम्र हुए पर भी हुए
कमलिनी-जन से अपमानित ।
सजल सूख अतः अति पाण्डुर
मदनतप्तयुवासम होगये ॥

[१४]

अमी समुद्धूतसरोजरेणुना
हृता हृतासारकणेन वायुना ।
उपागमे दुश्चरिता इवापदां
गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुखाः ॥

✼

सुखद, शीतल, मन्द, सुगन्धित
पवन से यह षट्पद कृष्ट † हो ।
विपदमें फँसने पर दुष्ट ज्यों
न सकता गति-निश्चय को कर ॥

[१५]

मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः
शिखाः पिशङ्गीः कलमस्य बिभ्रती ।
शुकावलिव्यक्तशिरीषकोमला
धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥

✼

ललित विद्रुमलोहित चोंच में
कलम की मृदुपीत-शिखा लिये ।
हरित है शुकपंक्ति दिखारही
छवि महा अमरेश्वर चाप को ॥

श्रीगिरिधर शर्म्मा ।

स्वदेश-प्रीति ।

[१]

आँख उठाकर जिधर को देखा
उधरो को पाया सुनसान ;
कारण ढूँढा अपने मन में,
निश्चय जाना यही निदान ।

---

* कलम = धान ।	† कृष्ट = खींचा जाकर ।

देश देश के जितने जन हैं
देश-भक्ति दिखलाते हैं ;
पर हम अपने देश में इसका
लेश भी नहीं पाते हैं ।
चेतो, जागो, होश सँभालो,
कमर बाँध कर हो तैयार ;
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[२]

द्वेष-दृष्टि को छोड़ बड़ों को
अपने से बढ़कर मानो ;
भारतजननी के सुत होकर
तात-सदृश सबको जानो ।
घड़ी रेल के पुर्ज़े सम तुम
अपने को भी अनुमानो ;
एक् में भी त्रुटि होने पर सब
काम बिगड़ता पहिचानो ।
सहानुभूति, सचाई, धीरज,
अपना इष्टदेव निर्धार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[३]

प्रति दिन अपने काम काज में
जो जो चीज़ें लाते हो ,
सभी देश की निर्मित हों, जो
पीते हो या खाते हो ।
बन ठन कर या सज धज कर जो
यारों को दिखलाते हो ;
लेन देन में आती हों, या
जिनसे मन बहलाते हो ।
दृढ़ अनुमान चित्त में करके
करो सब कहीं ख़ूब प्रचार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[४]

वर-विद्या-विज्ञान सीखने
अन्यदेश को भी जाओ ;
करो प्रचार देश में उनका
और सभी को सिखलाओ ।
अपने ही मन में उनको रख
गूंगे से मत बन जाओ ;
खोलो भाँति भाँति की शाला,
गुण की गरिमा दिखलाओ ।
साहस करो, पढ़ो चित देकर
इतिहासों के चरित उदार ;
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

[५]

देश-भक्ति को कभी न छोड़ो
सब सुख का है दाता देश ;
हम उसके, वह सदा हमारा,
यही करो विश्वास विशेष ।
माता को सुत छोड़ चहै जिस
देश वास करने जावै
तदपि उसीका तनय वहां भी
वह सदैव ही कहलावै ।
अतः उक्त गुणगण को अपना
पूरण हितकारी निर्धार,
सब स्वदेशवासी जन मिल कर
देशोन्नति की करो पुकार ॥

चण्डिकाप्रसाद अवस्थी ।

नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम।

एक आक़ा* था हमेशा, नौकरों पर सख़्तगीर ।
दरगुज़र थी और न साथ उनके रिआयत थी कहीं ॥
बे सज़ा कोई ख़ता, होती न थी उनकी मुआफ़ ।
काम से मोहलत् कभी, मिलती न थी उनके तईं ॥

* मालिक ।

हुस्ने[१] ख़िदमत पर इज़ाफ़ा[२] या सिला[३] तो दरकिनार
ज़िक्र क्या निकले जो फूटे मुँह से उसके आफ़रीं[४] ॥

पाते थे आक़ा को वह, होते थे जब उससे दो चार[५] ।
नथने फूले, मुँह चढ़ा, माथे पै बल, अबरू पै चीं[६] ॥

थी न जुज़ तनख़्वाह नौकर के लिये कोई फ़तूह ।
आ के हो जाते थे ख़ायन[७] जो के होते थे अमीं[८] ॥

रहता था एक एक शरायत नामा हर नौकर के पास ।
फ़र्ज़ जिसमें नौकर और आक़ा के होते थे तयीं[९] ॥

गर रिआयत का कभी, होता था कोई ख़्वास्तगार ।
ज़हर के पीता था घूँट, आख़िर बजाये अंगबीं[१०] ॥

हुक्म होता था शरायतनामा दिखलाओ हमें ।
ताके यह दरख़्वास्त देखें वाजबी है या नहीं !

वहाँ[११] सिवा तनख़्वाह के, था जिसका आक़ा ज़िम्मेदार,
थीं करें जितनी वह सारी नौकरों के ज़िम्मै थीं ।

देखकर काग़ज़ को हो जाते थे नौकर लाजवाब ।
थे मगर वह सबके सब आक़ा के मारे-आस्तीं[१२] ॥

एक दिन आक़ा था एक मुँहज़ोर घोड़े पर सवार ।
थक गये जब ज़ोर करते करते दस्ते-नाज़नी[१३] ॥

दफ़अतन क़ाबू से बाहर होके भागा राहवार[१४] ।
और गिरा असवार सदरे ज़ीं से बालाये ज़मीं[१५] ॥

की बहुत कोशिश न छूटी, पाँव से लेकिन रकाब ।
की नज़र साईस की जानिब कि आकर हो मुयीं[१६] ॥

था मगर साईस ऐसा संगदिल और बे-वफ़ा ।
देखता था, और टससे मस न होता था लयीं[१७] ॥

दूरही से था उसे काग़ज़ दिखा कर कह रहा ।
देख लो सरकार ! इसमें शर्त यह लिक्खी नहीं !!

---

१. अच्छी सेवा करने पर । २. तरक्क़ी । ३. इनआम । ४. साधुवाद । ५. सामना होना । ६. भ्रूभङ्गता । ७. ख़यानत करनेवाले, बेईमान । ८. अमानतदार । ९. नियत । १०. शहद की जगह । ११. शरायतनामे में । १२. आस्तीन के साँप । १३. कमज़ोर हाथ । १४. घोड़ा । १५. ज़ीन पर से-ज़मीन पर । १६. मददगार । १७. दुष्ट ।

मार्तण्ड-महिमा ।

सूर्य संसार की आत्मा है । यदि वह न हो तो प्रलय हो जाय । स्थावर-जङ्गम जगत् नाश को प्राप्त हो जाय । कोई जीवधारी सजीव न रह सके । आकाश में हम जितने तेजस्क पिण्ड देखते हैं—तेजःपुञ्जता में सूर्य का नम्बर सबसे ऊंचा है । जैसा वह तेजोवान् है वैसाही वह बड़ा भी है । उसके आकार और परिमाण का हिसाब सुन कर हैरत होती है ।

हमारे भुवनभास्कर सूर्यदेव के बिम्ब का व्यास, एक धुरी से दूसरी धुरी तक, ८,६५,००० मील है । इससे उसके बृहदाकार का ठीक ठीक अनुमान नहीं हो सकता । अतएव इस बात को दूसरी तरह से समझाना चाहिए । कल्पना कीजिए कि सूर्य के चारों ओर रेल की पटरी बिछी हुई है । उस पर ६० मील फ़ी घण्टे के हिसाब से दौड़नेवाली एक तेज़ रेलगाड़ी चलती है । उस पर आप सवार हैं । वह पांच वर्ष तक, बराबर, दिन-रात, बिना एक मिनट भी ठहरे, यदि सूर्य के गिर्द दौड़ती रहे, तो कहीं आप सूर्य के विराट् बिम्ब की पूरी परिक्रमा कर सकें !

जब हम सूर्य के बिम्ब का मुक़ाबला पृथ्वी से करते हैं तब सूर्य के विस्तार का ख़याल करके हमको और भी आश्चर्य्य होता है । यदि सूर्य के दस लाख टुकड़े बराबर बराबर काटे जांय तो भी उसका एक टुकड़ा हमारी समूची पृथ्वी से बड़ा निकले ! अगर एक इतना प्रकाण्ड तराज़ू बनाया जाय कि सूर्य का बिम्ब उसके एक पल्ले में आजाय तो दूसरे पल्ले में हमारी पृथ्वी के समान तीन लाख पृथ्वी-पिण्ड रखने से भी सूर्य-वाला पल्ला नीचे ही रक्खा रहे !!! सूर्य को यदि हम एक बहुत बड़ा थाल मानें तो बेचारी पृथ्वी को सरसों से भी छोटो मानना पड़ेगा । सूर्य के सामने पृथ्वी एक छोटे से भी छोटा नुक़ता है ।

पृथ्वी और सूर्य की तुलना का अन्दाज़ करने के लिए हम, यहां पर, एक चित्र देते हैं—

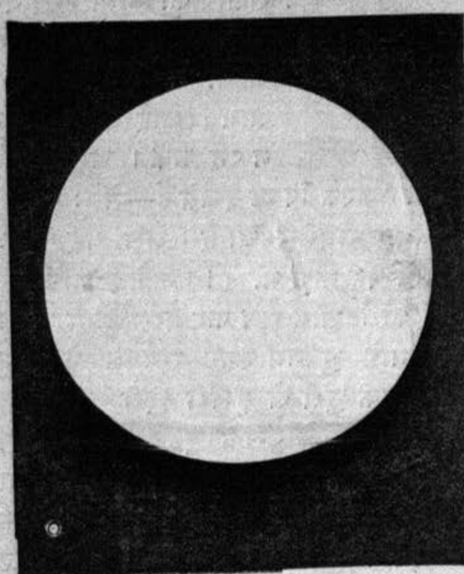

सूर्य में अपार उष्णता है। उसकी माप नहीं की जा सकती। संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो उष्णता में उसकी बराबरी कर सके। कोई तरकीब भी ऐसी नहीं है जिससे किसी चीज़ में उतनी उष्णता पैदा की जा सके जितनी सूर्य में है। प्लैटीनम एक धातु है। वह बहुतही सख्त होती है। वह बहुतही कम घिसती है। यदि उसके तार के भीतर हम किसी रासायनिक प्रक्रिया से एक प्रचण्ड ज्वाला की धारा प्रवेश कर दें तो वह तार पहले उष्ण होकर लाल हो जायगा। फिर वह इतना उष्ण हो जायगा कि उसमें सफ़ेदी आ जायगी। धीरे धीरे उसकी उष्णता इतनी अधिक हो जायगी कि उसका तेज आँखों को असह्य हो उठैगा। तब वह जल उठैगा और टूट जायगा। पर इस हालत को पहुँचने पर भी उसमें इतनी उष्णता न आवैगी जितनी कि हमारे दिवाकर देवता के तेजोमय पिण्ड में है।

पृथ्वी से सूर्य ९२,७००,००० मील दूर है। पर इससे हम क्या समझे? अङ्क उच्चारण करने से इस दूरी का बहुत कम अन्दाज़ हो सकता है। याद रखिए कि यदि दस लाख तक गिनती गिनैं तो तीन दिन और तीन रात, बिना थमें, गिनना पड़े। तब कहीं दस लाख तक गिन जाने की नौबत आवै। अब यदि हम इस गिनती को ९३ दफ़े गिनैं तब कहीं सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी के मील हम गिन सकें! कहीं ठौर ठिकाना है!!!

आकाश में, रात के समय, हम अनेक तारे देखते हैं। कोई छोटा, कोई बड़ा। कोई खूब चमकीला, कोई खूब धुंधला। उनमें जो रोशनी है वह उन्हें कहां से मिली है? बतलाइए। उनमें से बहुत ऐसे हैं जो अपनी ही रोशनी से रौशन हैं; अपने ही प्रकाश से प्रकाशवान् हैं। ऐसों का नाम तारा या तारका है। पर बहुत से ऐसे भी हैं जो सूर्य के ऋणी हैं। सूर्य ही से वे प्रकाश पाते हैं। उसे वे सूर्य ही से उधार लेकर अपना काम चलाते हैं। हमारे चन्द्रदेव के पास प्रकाश की जमा जथा बिलकुल ही नहीं। इस विषय में वे दिवालिये हो रहे हैं। यदि सूर्यनारायण छायानाथ की प्रभा-विस्तारिणी कोठी से उन्हें थोड़ी सी प्रभा न मिले तो वे बेचारे अँधेरेही में पड़े रहैं।

जो ये छोटे छोटे तारे रात को चमकते हुए देख पड़ते हैं, उनको तुच्छ और क्षीणप्रभ न समझिए। उनमें से कोई कोई हमारे भुवनदीपक परम तेजस्वी सूर्यदेव को कुछ भी नहीं समझते। सूर्य उनके सामने एक क्षुद्र चिराग़ है; एक छोटी सी मोमबत्ती है। उनके कम प्रकाशवान् देख पड़ने का कारण यह है कि वे पृथ्वी से बहुत दूर हैं; सूर्य से भी सैकड़ों गुना आगे हैं। इसीसे वे इतने लघुकाय, इतने कम तेजस्क, देख पड़ते हैं। ज्वाला वमन करनेवाले और महाविदाही स्वभाव के हमारे चण्डांशु यदि कहीं किसी संसारचक्र में फँस कर उन्हीं तारों के पास जा

पड़ें तो आप हम लोगों की नज़र में यहाँ तक हक़ीर हो जाँय कि उनके नाम का सन्ध्या-वन्दन तक सहसा बन्द हो जाय। उनका सारा तेज वहीं आकाश में कहीं गुम हो जाय। हम तक वह हरगिज़ न पहुँच सके; उससे हमारा कोई काम न हो सके; रात ज्यों की त्यों बनी रहे; कभी प्रातःकाल ही न हो! सूर्यदेव से हमारा बहुत काम निकलता है। इसीसे हम उनको इतना पूज्य समझते हैं। इसी-से हम उनका इतना आदर करते हैं। परन्तु इस अनन्त आकाश के वही सातवें एडवर्ड नहीं हैं; वही दूसरे ज़ार निकलस नहीं हैं; वही सभापति रूज़वेल नहीं है। ये जो छोटे छोटे तारे रात को चम चम करते हुए देख पड़ते हैं, उनमें से अनेक ऐसे हैं जो हमारे भास्कर-राव के प्रपितामह से भी बड़े होने की बड़ाई रखते हैं! आया समझ में? जिस अनन्त आकाश में ऐसे ऐसे अनन्त पिण्ड पड़े हुए हैं, उसके बनानेवाले ईश्वर की परमा शक्ति का भी हमको कभी ख़याल होता है? कभी नहीं। कभी कभी होता भी है तो बहुत कम। उसके, और उसके बनाये हुए ऐसे ऐसे आतङ्क-जनक पदार्थों के, सामने यह तुच्छातितुच्छ मनुष्य भी कोई चीज़ है? तिस पर भी उसे इतना घमण्ड! हम बड़े पण्डित, हम बड़े वक्ता, हम बड़े उद्योगी, हम बड़े लेखक, हम बड़े खोजक! हमारी बात को कोई न काटे, हमारी शान के ख़िलाफ़ कोई ज़बान न हिलावे, "हम चुनां दीगरे नेस्त"! छिः!

देखने में सूर्य चिपटा मालूम होता है। पर वह चिपटा नहीं है। वह दंदह्यमान आग से भरा हुआ एक गोला है। पर वह गोला बना किस चीज़ का है? वह ठोस नहीं है; वह जड़ नहीं है। परीक्षा से जाना गया है कि वह गैस—एक प्रकार की भाफ—के सदृश किसी पदार्थ से बना है। यह बात कई प्रमाणों से प्रमाणित है। उन सब में से धब्बों का प्रमाण विशेष प्रामाण्य है। सूर्य के बिम्ब के ऊपर जो काले काले दाग़, या केतु, या तिलक देख पड़ते हैं उन्हींसे हमारा मतलब है। नीचे का चित्र देखिए—

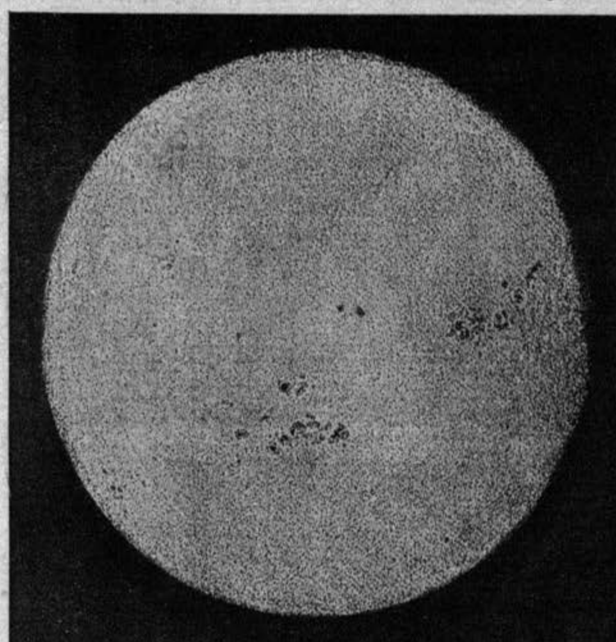

ये केतु स्थिर नहीं रहते; घूमा करते हैं। ये सूर्य के बिम्ब के चारों ओर परिक्रमा सी किया करते हैं। कोई २५ दिन में वे उसके चारों तरफ़ घूम आते हैं। इनमें से कोई छोटे हैं, कोई बड़े। सब के घूमने का समय बराबर नहीं है, कुछ कम ज़ियादह है। ज्योतिषियों का ख़याल है कि यदि सूर्य ठोस होता तो इन सब केतुओं के घूमने का समय भी बराबर होता। ये केतु इस बात के भी प्रमाण हैं कि पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है और २५ या २६ दिन में एक बार घूम जाता है। कभी कभी एक के कई केतु हो जाते हैं और उनकी गति एक घंटे में एक हज़ार मील से भी अधिक हो जाती है।

अध्यापक यङ्ग ने परीक्षा से सिद्ध किया है कि कोई कोई केतु एक घण्टे में छः हज़ार मील के हिसाब से दौड़ लगाता है। ये केतु छोटे नहीं होते; आठ आठ दस दस हज़ार मील लम्बे होते हैं!

जब जब ये केतु अधिकता से देख पड़ते हैं तब तब कोई न कोई अस्वाभाविक प्राकृतिक घटना ज़रूर होती है। बड़े बड़े तूफ़ान आ जाते हैं। बर्फ़ बेतहाशा पड़ने लगती है। वैद्युतिक प्रवाह इतने वेग से बहने लगता है कि दुनिया भर के तारघरों में एक ही साथ तार का काम बन्द हो जाता है। अर्थात् इन केतुओं के कारण जब सूर्य के पिण्ड में गड़ बड़ शुरू होता है, तब पृथ्वी के पिण्ड में भी किसी न किसी तरह को अस्वाभाविक घटना ज़रूर होती है। इस साल, फ़रवरी से, इन केतुओं का आकार बढ़ा हुआ देख पड़ता है। कई जगह की वेधशालाओं में दूरबीन से सूर्यबिम्ब को देखने से यह बात सिद्ध होती है। इसका नतीजा जो हुआ है वह हम, भूमण्डलवासियों पर, अच्छी तरह विदित है। वह कभी भूलने का नहीं। इसी कारण से अस्वाभाविक हिम-वर्षा हुई है; इसी कारण से बर्फ़ के उत्पात और तूफ़ान आये हैं; इसी कारण से प्रायः सारे देश की फ़सल का संहार हुआ है और शायद इसी कारण से भूकम्प भी हुआ हो। बहुत सम्भव है कि किसी समय ये केतु इतने बड़े और इतने अधिक हो जाँय कि सूर्य की किरणें पृथ्वी तक बिलकुल ही न पहुँच सकें। अतएव शीताधिक्य के कारण जीवधारियों का सहसा नाश हो जाय और थोड़े ही समय में यह सभी स्थावर-जङ्गम सृष्टि प्रलय को प्राप्त हो जाय। इन केतुओं की सबसे अधिक वृद्धि हर दस या ग्यारह वर्ष में होती है। दो तीन वर्ष तक बढ़ते बढ़ते ये वृद्धि की हद तक पहुँच जाते हैं। फिर ये धीरे धीरे कम होने लगते हैं और यथाक्रम ह्रास की हद को पहुँच जाते हैं। इसी तरह ये घटा बढ़ा करते हैं।

सूर्य के बिम्ब, पिण्ड, या शरीर का ऊपरी हिस्सा काग़ज़ की तरह चिकना या समतल नहीं है। जैसे नारङ्गी के ऊपर दाने होते हैं वैसेही सूर्य के बिम्ब पर भी दाने हैं। डाक्टर हिगिन्स ने सूर्य के दानेदार बिम्ब का एक बहुत ही अच्छा चित्र बनाया है। उसे हम यहां प्रकाशित करते हैं—

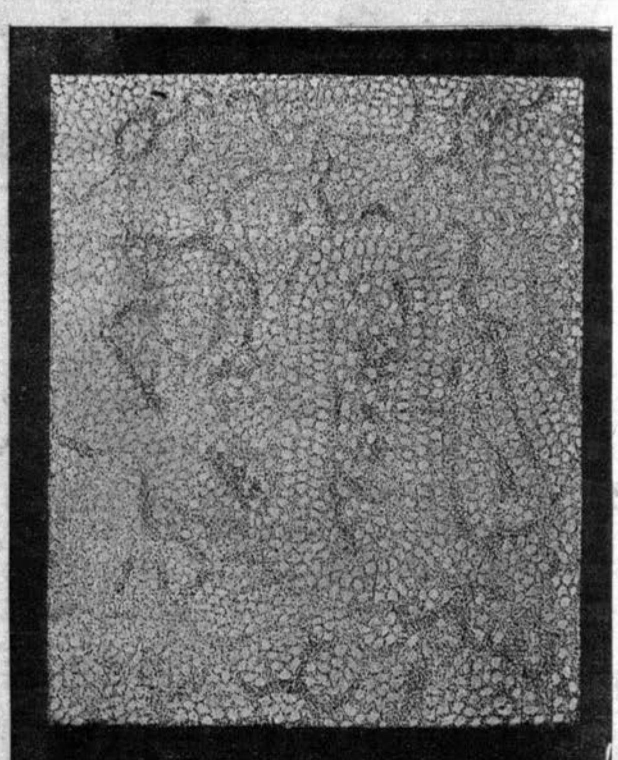

कैसा विलक्षण चित्र है। जान पड़ता है बीच में कई लड़ की एक मुक्तामाला सी पहनाई गई है।

सूर्य-बिम्ब का गिर्द एक अवर्णनीय छटा से आभूषित है। वह छटा एक प्रकार की देदीप्यमान झालर या शिखा है। वह शिखा बिम्ब के किनारे से बाहर निकली रहती है। जब सूर्य ख़ूब प्रकाशित रहता है तब वह नहीं देख पड़ती। सूर्य के

National Library
Calcutta-27.

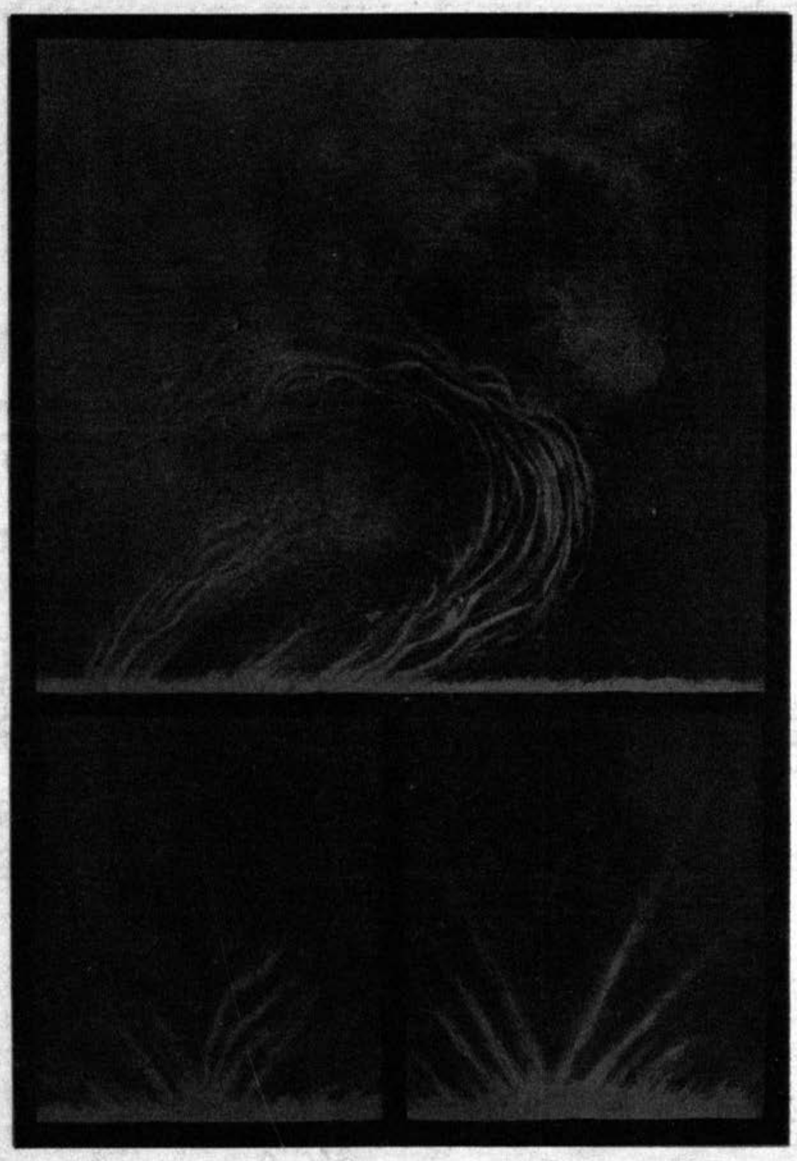

सूर्यमण्डल का दीप्तिप्रवाह ।

नेत्रघातक प्रकाश में आँखें उसे नहीं देख सकतीं। जब ग्रहण होता है तब सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा आ जाता है। यदि पूरा ग्रहण होता है, अर्थात् सूर्य के बिम्ब को चन्द्रमा पूरी तरह से ढक लेता है, तब इन दीप्तिमयी झालरों के देखने में बड़ी सुबिधा होती है। उस साल हिन्दुस्तान में खग्रास ग्रहण हुआ था। अतएव सूर्य के बिम्ब को देखने और इन तेजःपुञ्ज शिखाओं के दृश्य का आनन्द लूटने, तथा तद्विषयक अनेक वैज्ञानिक बातों को जांच करने, के लिए देशान्तर तक के बड़े बड़े ज्योतिषी यहां आये थे। इस साल भी गत ३० अगस्त को सूर्य का खग्रास ग्रहण हुआ। पर वह इस देश में बहुत कम दिखाई दिया।

विद्वानों का अनुमान है कि ये छटामय शिखर, ये दीप्तिमयी शिखायें, धधकती हुई गैस के समूह हैं। ये दीप्ति-शिखर सूर्य-बिम्ब से हमेशा बाहर निकले रहते हैं। कभी वे बहुत दूर तक चले जाते हैं और कभी थोड़ी ही दूर जाकर रह जाते हैं। ग्रहण के सिवा और समय में भी इनके देखने की युक्ति निकाली गई है। कभी कभी सूर्य-बिम्ब की बाहरी नोक से हज़ारों मील दूर तक इनकी लपट पहुँचती है। उस समय इनकी गति एक मिनट में छ हज़ार मील तक की हो जाती है! मालूम होता है, सूर्य के पिण्ड में आग की विराट भट्टियां जला करती हैं, जो प्रबल तूफ़ानों के कारण बेतरह भभक उठती हैं। अतएव गैस के रूप में आस पास की वायु और मेघ-मालिका बेतरह सन्तप्त होकर ज्वालामय हो जाती है और बढ़ी हुई होली की शिखा के समान उसकी लपटें दूर दूर चली जाती हैं। एक बार एक लपट की ऊँचाई ८०,००० मील लम्बी नापी गई थी। इस लम्बाई का कुछ ठिकाना है! पृथ्वी के व्यास की दस गुना!!! परन्तु इतने ही से न घबराइए, अभी इससे भी बड़ी बात सुनना बाक़ी है। यह बात ७ अक्टोबर, १८८० ईसवी, की है। अमेरिका की एक वेधशाला में बैठकर अध्यापक यङ्ग ने दिन के साढ़े दस बजे देखा कि सूर्य के दक्षिण-पूर्वी भाग से एक प्रचण्ड दीप्तिमयी शिखा निकली। हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि वह ४०,००० मील लम्बी थी। आध घण्टे में उसकी दीप्ति भी दूनी हो गई और लम्बाई भी। तब से वह बढ़ती ही गई, यहां तक कि वह साढ़े तीन लाख मील लम्बी हो गई!!! तेज़ से तेज़ गति देने वाली तोप से निकले हुए गोले की सौगुना तेज़ी से भी अधिक वेग के साथ यह दीप्ति-प्रवाह सूर्य से बाहर बहा था!!! कोई दो घण्टे में इसकी शान्ति हुई।

खग्रास ग्रहण के समय सबसे अधिक दर्शनीय और अद्भुत वस्तु सूर्य की कान्तिमाला या

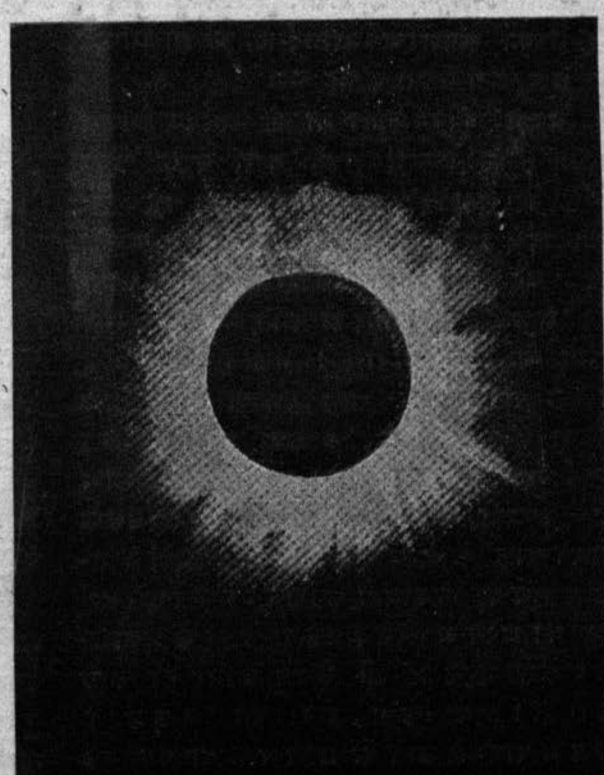

किरीट-मण्डल है। इसे दीप्तिच्छटा या प्रभामार्जनी भी कह सकते हैं। जब सूर्य का बिम्ब चन्द्रमा की आड़ में हो जाता है, अर्थात् जब सूर्य-मण्डल पर अन्धकार छा जाता है, तब बिजुली की रोशनी के समान उज्वल छटा सूर्य-बिम्ब के चारों तरफ़ दूर दूर तक फैल जाती है। देखने में वह ऐसी सुन्दर, ऐसी शोभाशालिनी, ऐसी मनोमोहिनी, होती है कि उसका वर्णन सर्वथा अनिर्वचनीय है। उसका बयानही नहीं हो सकता। बड़े बड़े विज्ञान-विशारद ज्योतिषी अभी इस बात को ठीक ठीक नहीं जान सके कि इस क्रान्तिमाला का क्या कारण है। इन किरीट-मण्डलों का विस्तार एक एक लाख मील तक होता है!

कभी कभी इस प्रभामाला में एक और विचित्रता देख पड़ती है। वह यह कि कमल के फूल की पंखुड़ियों के समान इसकी दो छटायें, दो तरफ़, साधारण माला की अपेक्षा अधिक दूर तक चली जाती हैं।

अपनी असीम उदारता से सूर्यदेव अपना प्रकाश और उष्णत्व अपने चारों तरफ़ फेंका करते हैं। आपको इस उष्णता का बहुत सा अंश व्यर्थ नष्ट जाता है। हम तक पहुँचने के पहले वह अनन्त आकाश ही में नष्ट हो जाता है। आपके दान का दो अरब से भी कम हिस्सा पृथ्वी के काम आता है। अर्थात् यदि सूर्य के मण्डल से दो अरब मन प्रकाश हमारे लिये रवाना किया जाय, तो ठिकाने पर पहुँचते पहुँचते सिर्फ़ एक मन रह जाय! सूर्य के पास प्रकाश और उष्णता का इतना ख़ज़ाना है कि उसके सामने क़ारूं के ख़ज़ाने का नाम लेना मानों तेजोनिधि सूर्य की विडम्बना करना है। अनन्त तारका-पुञ्जों को अपने अपरिमेय प्रकाश-कोश से प्रकाश-दान करते रहने पर भी उसमें उतनी ही कमी होती है, जितनी किसी छोटी सी चिड़िया के चोंच में पानी ले जाने से प्रशान्त महासागर के पानी की होती है।

हे भुवनभास्कार! हे त्रैलोक्य-दीपक! हे दिवानाथ! आप बड़े दयालु हैं। आपही की कृपा से हमारे खेतों में अनाज पैदा होता और पकता है। आपही की कृपा से समुद्र के पानी की भाफ बनती है। फिर वह बादलों का रूप धारण करती है। फिर वही बादल बरसते और पृथ्वी को आप्यायित करते हैं। आपही की कृपा से वायु बहती है। आपही की कृपा से लकड़ी में दाहिका शक्ति पैदा होकर हमारे सब काम आती है। जीवन धारण करने और चलने फिरने की, जो कुछ हम अपने चारों तरफ़ देखते हैं उसे पाने की, जो प्राकृतिक सुन्दरता हमारे नेत्रों को तृप्त करती है उसे देखने की, शक्ति हमें आपही से मिली है। इस सबके लिए हम अकेले आपके ही ऋणी हैं। आपसे हम कभी उऋण नहीं। आपने हम पर बड़ा उपकार किया है। अतस्तुभ्यं नमः।

आकाश में निराधार स्थिति।

योगियों को अनेक प्रकार की अद्भुत अद्भुत सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। योगशास्त्र में लिखा है कि वे आकाश में यथेच्छ गमन कर सकते हैं; जल में थल की तरह दौड़ सकते हैं; परकायप्रवेश कर सकते हैं; अन्तर्धान हो सकते हैं; और दूर देश या भविष्यत् की बात हस्तामलकवत् देख सकते हैं। पर, इस समय, इस देश में, इस तरह के सर्वसिद्ध योगी दुर्लभ हैं। यदि कहीं होंगे तो शायद हिमालय के निर्जन स्थानों में योगमग्न रहते होंगे।

अमेरिका से निकलनेवाली एक अंगरेज़ी मासिक पुस्तक को एक दिन हमने खोला तो उसके भीतर छपे हुए कागज़ों का एक ख़ासा पुलिन्दा मिला। उसमें कई तरह के नियम पत्र, नमूने और तसवीरें इत्यादि थीं। उनको अमेरिका की एक आध्यात्मिक सभा ने छपाया और प्रका-

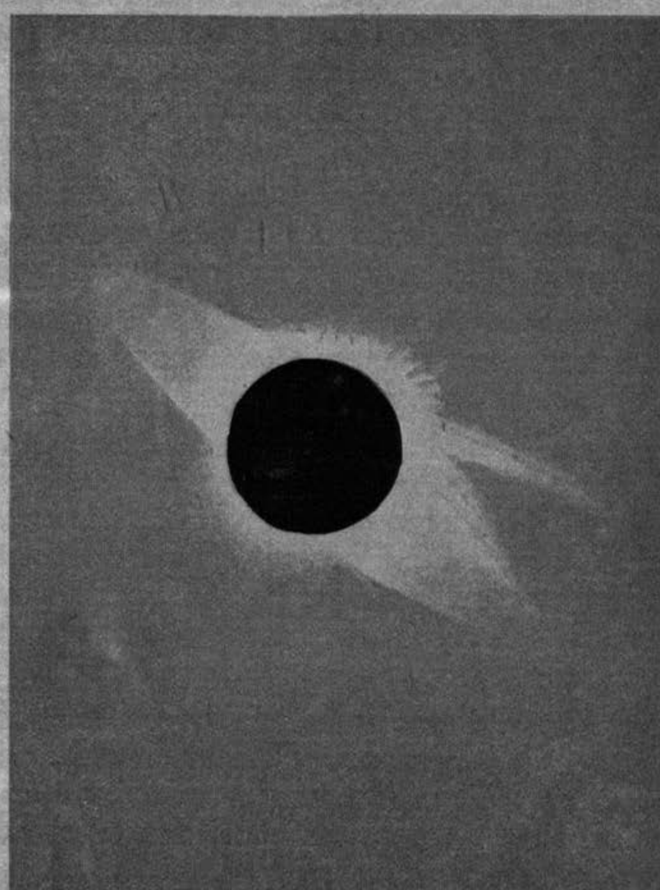

कमल की पंखड़ियों के सदृश प्रभाभालावाला
खग्रास सूर्य-ग्रहण।

शित किया था। बहुत करके यह सभा कोई कल्पित सभा है। इन कागज़ों में लिखा था कि हिन्दुस्तान की सारी योगविद्या अमेरिका पहुँच गई है और अमेरिका की पूर्वोक्त सभा के चन्द योगी, इस विद्या को, बहुत थोड़ी फ़ीस लेकर, सिखलाने को राज़ी हैं, यहां तक कि कितने ही आदमियों को उन्होंने पूरा योगी बना भी दिया है। यह योग-शिक्षा डाक के ज़रिये से वे लोग देते हैं; परन्तु कई डालर फ़ीस पहलेही भेजना पड़ती है। एक डालर कोई तीन रुपये का होता है। इन काग़ज़ों में एक साहब और एक बंगाली बाबू का नाम था और लिखा था कि ये लोग अश्रुतपूर्व योगी हैं। इनमें इस देश की विद्या की, इस देश के पण्डितों की, इस देश के योगियों की बेहद व बेहिसाब तारीफ़ थी। उससे जान पड़ता था मानों यहां गली गली योगी मारे मारे फिरते हों। हमने इस सभा को एक पत्र लिखा। हमने कहा कि आपके अद्भुत योगी—बंगाली बाबू—का यहां कोई नाम भी नहीं जानता और योगसिद्ध पुरुष यहां उतने ही दुर्लभ हैं जितना कि पारस पत्थर, या सञ्जीवनी बूटी, या देवताओं का अमृत। अतएव आपको सभावालों को यह योगविद्या कहां से और किस तरह प्राप्त हुई? ख़ैर। हम भी आपसे योग सीखना चाहते हैं और फ़ीस भी देना चाहते हैं; परन्तु डालर-दान के पहले हम आपसे योग-विषयक एक बात पूछना चाहते हैं। यदि आप हमारे प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर भेज कर हमारा समाधान कर देंगे तो हम आपकी सभा से ज़रूर योग सीखेंगे।

अमेरिका दूर है। इससे कोई डेढ़ महीने में उत्तर आया। योगी बाबू इत्यादि के विषय में हमने जो कुछ लिखा था, उत्तर में उसका बिलकुल ही ज़िकर हमें ढूंढ़े न मिला। हमारे प्रश्न का समाधान भी नहीं मिला। मिला क्या? उत्तर के साथ काग़ज़ों का एक और पैकट! उनमें कहीं प्रशंसापत्र, कहीं योगासन के चित्र, कहीं कुछ, कहीं कुछ। पत्र में सिर्फ़ यह लिखा था कि डालर भेजिए तब आपके प्रश्न का उत्तर दिया जायगा और तभी योग का सबक़ भी शुरू किया जायगा! इस उत्तर को पढ़ कर हमें योगियों की इस सभा से अत्यन्त घृणा हुई और हमने उसके काग़ज़ पत्र उठाकर रद्दी में फेंक दिये। सो, अब, हिन्दुस्तान की योगविद्या यहां से भग कर योरप और अमेरिका जा पहुंची है और वहां उसने पूर्वोक्त प्रकार की सभा-संस्थाओं का आश्रय लिया है। तथापि यहां अब भी, कहीं कहीं, योग के किसी किसी अङ्ग में सिद्ध पुरुष पाये जाते हैं।

मिर्ज़ापुर में एक गृहस्थ हैं। वे गृहस्थाश्रम में रह कर भी बीस मिनट तक प्राणायाम कर सकते हैं। इसी शहर के पास एक जगह विंध्याचल है। वहां विंध्यवासिनी देवी का मन्दिर है। मन्दिर से कोई दो मील आगे एक पहाड़ पर एक महात्मा रहते हैं। अगस्त १९०४ में हम उन्हें देखने गये थे। एक निबिड़ खोह में एक झरना था। वहीं आप थे। आपके पास एक हांडी के सिवा और कुछ नहीं रहता। इससे लोग इन्हें "हँड़िया बाबा" कहते हैं। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं और प्रायः संस्कृत ही बोलते हैं। हमने ख़ुद तो नहीं देखा, पर सुनते हैं, योग के कई अङ्ग इनको सिद्ध हैं। अभी, कुछ दिन हुए, कानपुर में एक योगी आये थे। वे तीन दिन तक समाधि लगा सकते थे।

पुराने ज़माने की बात हम नहीं कहते। रामकृष्ण परमहंस आदि योग-सिद्ध महात्मा इस ज़माने में भी यहां हुए हैं। सुनते हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द को भी योग में दख़ल था। कई वर्ष हुए पञ्जाब के किसी नवयुवक की अद्भुत सिद्धियों का वृत्तांत भी हमने अख़बारों में पढ़ा था। इससे जान पड़ता है कि योग के सब अङ्गों में सिद्धि प्राप्त करने वाले पुरुष यद्यपि इस समय दुर्लभ हैं, तथापि

उसके कुछ अङ्गों में जिन्हें सिद्धि हुई है, ऐसे लोग अब भी यहां पर, कहीं कहीं, देखे जाते हैं।

आकाश में निराधार स्थिर रहना और आकाश में यथेच्छ विहार करना बहुत कठिन काम है। पर यदि योगशास्त्र में लिखी हुई बातें सच हैं—और उनके सच होने में सन्देह भी नहीं है—तो ऐसा होना सर्वथा सम्भव है। सुनते हैं शङ्कराचार्य्य यथेच्छ व्योमविहार करते थे। शङ्करदिग्विजय एक ग्रन्थ है। उसमें शङ्कराचार्य्य का जीवन-चरित है। उसमें एक जगह लिखा है—

ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं मण्डनं पण्डितमाशु जेतुम्।
गच्छन् खसृत्या पुरमालुलोके माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः॥

अर्थात् मण्डन पण्डित को जीतने के लिए भगवान् शङ्कराचार्य्य ने प्रयाग से प्रस्थान किया और आकाशमार्ग से गमन करके मण्डनमण्डित माहिष्मती नगरी को देखा।

अतएव कोई नहीं कह सकता कि यह बात असम्भव, अतएव ग़लत है। आकाशविहार करना तो बहुत कठिन है, पर आकाश में निराधार ठहरने का एक आध दृष्टान्त हमने भी सुना है। हमें स्मरण होता है, हमने कहीं पढ़ा है कि कोई गुजरात देश के महात्मा ज़मीन से कुछ दूर ऊपर उठ जाते थे और थोड़ी देर तक निराधार वैसेही ठहरे रहते थे। पर इस प्रकार की सिद्धियों को दिखलाकर तमाशा करना अनुचित है। योगसाधना तमाशे के लिए नहीं की जाती। इससे हानि होती है और प्राप्त से अधिक सिद्धि पाने में बाधा आती है। हरिदास इत्यादि योगियों ने जो अपनी योगसिद्धि के दृष्टान्त दिखलाये हैं, वे तमाशे के लिए नहीं, केवल योग में लोगों का विश्वास जमाने के लिये। तमाशा लौकिक प्रसिद्धि प्राप्त करने या रुपया कमाने के लिए दिखाया जाता है। पर योगियों को इसकी परवा नहीं रहती। वे इन बातों से दूर भगते हैं; उनकी प्राप्ति की चेष्टा नहीं करते। परन्तु जिन लोगों ने योग की सिद्धियों की बात नहीं सुनी, वे ऐसे तमाशों को बहुत कुछ समझते हैं। ऐसे एक तमाशे का हाल हम यहां पर लिखते हैं। यह तमाशा एक सिविलियन (मुल्की अफ़सर) अङ्गरेज़ का देखा हुआ है। उसकी इच्छा है कि इँगलैण्ड की अध्यात्म-विद्या-सम्बधिनी सभा इसकी जांच करै। यह वृत्तान्त एक अङ्गरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। तमाशा है इसदेश का, पर यहां के किसी पत्र या पत्रिका को इसका समाचार नहीं मिला। समाचार गया विलायत; वहां से अङ्गरेज़ी में छपकर यहां आया। तब उसे पढ़ने का सौभाग्य हिन्दुस्तानियों को हुआ! अब इस तमाशे का हाल पर्वोक्त सिविलियन साहब ही के मुँह से सुनिए—

"हिन्दुस्तान के उत्तर में नवम्बर के शुरू में जाड़ा पड़ने लगता है। तब ज़िले के सिविलियन साहब दौरे पर निकलते हैं। मुझे भी हर साल की तरह दौरे पर जाना पड़ा। एक दिन एक पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी ज़मीदार ने आकर मुझसे मुलाक़ात की। उसने कहा कि मैंने एक बड़ा ही आश्चर्य्यजनक तमाशा देखा है। आत्मविद्या (Mesmerism) के बल से एक लड़का ज़मीन से चार फुट ऊपर, अधर में, बिना किसी आधार के ठहरा रहता है। इससे मिलते जुलते हुए तमाशों का हाल मैंने सुन रक्खा था। मैंने सुना था कि मदारी लोग रस्सी को आकाश मे फेंक कर उस पर चढ़ जाते हैं और इसी तरह के अजीब अजीब तमाशे दिखलाते हैं। पर मैंने यह न सुना था कि कोई आकाश में भी बिना किसी आधार के ठहर सकता है। इससे इस तमाशे को देखने की मुझे उत्कट अभिलाषा हुई। मेरे हिन्दुस्तानी मित्र ने मुझसे वादा किया कि मैं आपको यह तमाशा दिखलाऊँगा।

"१४ नवम्बर १९०४ को मेरे मित्र ने मुझ पर फिर कृपा की। इस दफ़ा वह उस तमाशावाले को भी साथ लेता आया। यह देख कर मैं बहुत

ख़ुश हुआ। तमाशावाले की उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम थी। उसने कहा मैं ब्राह्मण हूं। जहां पर मेरा ख़ेमा था, वहीं, कुछ दूर पर, उसने कोई १२ वर्ग फुट जगह साफ़ करके, उसके तीन तरफ़ क़नात लगा दी। चौथी तरफ़ उसने पर्दा डाल दिया। इच्छानुसार पर्दा डाल दिया जासकता था और उठा भी लिया जासकता था। पर्दे से १५ फुट की दूरी पर देखनेवाले बैठे। तमाशावाले के साथ एक लड़का था। उसकी उम्र बारह तेरह वर्ष को होगी।

"जिस विद्या को अङ्गरेज़ी में मेस्मेरिज्म कहते हैं उसका ठीक ठीक अनुवाद हिन्दी में हम नहीं कर सकते। पर इस विद्या के नाम से सरस्वती के प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे। इसमें जिस व्यक्ति पर असर डाला जाता है, वह असर डालने वाले के वश में हो जाता है। इसे आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या, वशीकरण विद्या, आदि कह सकते हैं। इसी विद्या के नियमों के अनुसार तमाशा-वाले ने उस लड़के पर असर डालना शुरू किया। तमाशावाले को इससे आगे हम प्रयोक्ता के नाम से उल्लेख करेंगे। कुछ देर तक प्रयोक्ता ने लड़के पर पाश डाले। इतने में वह निश्चेष्ट हो गया। तब प्रयोक्ता ने उसे एक सन्दूक़ पर चित लिटा दिया। सन्दूक़ उसने पहले ही से क़नात के घेरे के भीतर रख लिया था। फिर उसे उसने एक कपड़े से ढक दिया और परदे को नीचे गिरा दिया। तमाशे का पहला दृश्य यहां पर समाप्त हो गया।

"तीन चार मिनट के बाद परदा फिर उठा और दूसरा दृश्य दिखाई दिया। हम लोगों ने देखा कि वह लड़का मोटे कपड़े की एक गद्दी पर पद्मासन में बैठा है। यह गद्दी एक तिपाई के ऊपर रक्खी थी। तिपाई बांस की थी। नीचे, तीनों बांस अलग अलग थे; पर ऊपर वे तीनों एक दूसरे से मिला कर बांध दिये गये थे। उनके उस भाग पर, जो ऊपर निकला था, गद्दी रक्खी थी। लड़के के हाथ दोनों तरफ़ फैले हुए थे। हाथों के नीचे एक एक बाँस और था। उसीको नोक पर हाथों की हथेली रक्खी थी। ये दोनों बाँस तिपाई के बांसों से कुछ लम्बे थे। वे नीचे ज़मीन को सिर्फ़ छुए हुए थे; गड़े न थे। लड़के का सिर और उसके कन्धे एक काले कपड़े से ढके थे। इस कपड़े को प्रयोक्ता कभी कभी उठा देता था जिससे लड़के का चेहरा खुल जाता था और छाती भी देख पड़ने लगती थी।

"इसके बाद प्रयोक्ता ने तिपाई के तीनों बाँस एक एक करके धीरे धीरे खींच लिये। लड़का पूर्वोक्त गद्दी के ऊपर, वैसेही पालथी मारे हुए, आकाश में बैठा रह गया! उसका आसन ज़मीन से कोई चार फुट ऊपर था। उसके हाथ वैसेही फैले हुए थे और पूर्वोक्त दोनों बाँसों पर रक्खे हुए थे। इन दो बाँसों की उँचाई छ फुट होगी। हम लोग निर्निमेष दृष्टि से लड़के की तरफ़ देख रहे थे कि प्रयोक्ता "फ़कीर" ने उन दो बाँसों में से भी एक को खींच लिया और

लड़के के हाथ को समेट कर छाती पर रख दिया। तब लड़के का सिर्फ़ एक हाथ बाँस पर रह गया। यह देखकर हम लोगों के आश्चर्य्य की सीमा न रही। क्या बात थी जिससे वह लड़का, पत्थर की मूर्ति के समान, निश्चल भाव से, आकाश में, इस तरह, बैठा रह गया? क्यों न वह धड़ाम से नीचे आ गिरा?

"मैंने उस साधु से कहा—"क्या मैं तुम्हारे पास तक आ सकता हूं?" अब तक मैं परदे से कोई १५ फुट और उस लड़के से कोई २० फुट दूर बैठा था। प्रयोक्ता ने कहा—"जितना नज़दीक़ आप चाहें चले आवें; पर लड़के के बदन पर हाथ न लगाइएगा"। कई और तमाशबीनों के साथ मैं आगे बढ़ा और लड़के से छ इञ्च के फ़ासले तक चला गया। मैं उसके आसन के नीचे गया, पीछे गया, इधर गया, उधर गया—किसी जगह की जांच मैंने बाक़ी नहीं रक्खी। यहां तक कि मैंने अपनी छड़ी के सब तरफ़ फेर कर देखा कि कहीं कोई तार या और कोई आधार ते नहीं हैं जिसके बल से यह लड़का आकाश में ठहरा हुआ है। पर मुझे कोई चीज़ नहीं मिली। लड़का जहां का तहां मेरे सामने अधर में बैठा था। उसका चेहरा खुला था। उसकी छाती भी देख पड़ती थी। यहां तक कि सांस लेते समय मैं उसकी छाती पर श्वासोच्छास की चाल भी देखता था।

"दो मिनटतक हम लोग वहां खड़े जाँच करते रहे कि कोई चालबाज़ी की बात हमको वहां मिलै। पर हमारा प्रयत्न बेकार हुआ। लड़का अपने स्थान पर, आकाश में, अचल रहा। तब हम लोग अपनी जगह पर लौट आये और बैठ गये। पर उस साधु ने हमें अपनी जगह पर जाने के लिए नहीं कहा और न उसने यही कहा कि हम लड़के के पास से हट जाँय, जिसमें वह तमाशे का अन्तिम दृश्य भी दिखला सके। जब हम लोग अपनी जगह पर बैठ गये तब तमाशे का अत्यन्तही अद्भुत और आश्चर्य्य-जनक दृश्य हमको दिखलाया गया। प्रयोक्ता ने दूसरे बाँस को भी धीरे से खींच लिया और उस पर रक्खे हुए हाथ को समेट कर लड़के की छाती पर पहले हाथ के ऊपर रख दिया। लड़का पूर्वोक्त गद्दी पर पद्मासन में निराधार बैठा हुआ रह गया। उसके दोनों हाथ छाती पर एक दूसरे के ऊपर रक्खे थे। न उसके नीचे कुछ था; न आगे था; न पीछे था; न इधर था; न उधर था! इस दशा में वह ब्राह्मण लड़के से कोई चार पाँच फुट की दूरी पर कुछ देर तक खड़ा रहा। तब उसने परदा गिरा दिया और वह लड़का हम लोगों की नज़र से छिप गया। यहां पर इस तमाशे का दूसरा दृश्य समाप्त हुआ।

"जब तीसरी दफ़ा परदा उठा तब हमने उस लड़के को पूर्वोक्त सन्दूक़ पर लेटा हुआ देखा। कुछ देर में उस ब्राह्मण ने लड़के पर से अपना असर (उलटे पाश फेर कर) दूर करना आरम्भ किया। कोई दो मिनट में लड़का उठ बैठा और आँखें मल कर उस ब्राह्मण की तरफ़ देखने लगा। इस तमाशे में आदि से अन्त तक कोई बीस या पच्चीस मिनट लगे होंगे।

"मैंने ब्राह्मण से पूछा—"क्या तुम किसी और आदमी को भी इसी तरह अपने वश में कर सकते हो"? उसने कहा—"यदि कोई बड़ी उम्र का आदमी इस बात की कोशिश करै कि मैं उसे अपने वश में न कर सकूं, अर्थात् उस पर अपना असर न

डाल सकूं, तो उस पर मेरा वश न चलैगा। पर बारह वर्ष या उससे कम उम्र के किसी भी लड़के को मैं अपने वश में कर सकता हूं—अर्थात् उसे मैं मेस्मेराइज़ (Mesmerise) कर सकता हूं"। मैंने चाहा कि मैं उसकी आत्मविद्या की परीक्षा लूं। मैंने दर्शकों की भीड़ में सब लोगों की तरफ़ देखना शुरू किया। मुझे एक लड़का देख पड़ा। वह पासही के एक गाँव से आया था। वह उस फ़कीर की करामात की जाँच अपने ऊपर कराने को राज़ी हुआ। मैंने उससे कहा—"वह आदमी तुमको सुला देने की कोशिश करैगा। यदि तुम नींद न आने दोगे और बराबर जगते रहोगे तो मैं तुमको एक रुपया दूंगा"। ब्राह्मण ने उस लड़के को अपने सामने बिठाया और उसके चेहरे की तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए उसने पाश देना शुरू किया। दो मिनट भी न हुए होंगे कि लड़का गहरी नींद में हो गया!

"मैं उन आदमियों में से हूं जो भूत, प्रेत, योग, आत्मविद्या और अन्तर्ज्ञान आदि में विश्वास नहीं करते। इससे, इस बात का पता न लगा सकने के कारण मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ—नहीं क्रोध आया—कि किस प्रकार वह लड़का निराधार अधर में बैठा रहा। अतएव मैंने उस ब्राह्मण से कहा कि क्या आप सदर में आकर अपना करतब दिखा सकते हैं? इस बात पर वह राज़ी हुआ। इसके लिए २१ नवम्बर १९०४ का दिन नियत हुआ। मैं सदर को वापस गया। यथासमय वह फ़कीर मेरे बँगले पर हाज़िर हुआ और वहां उसने इस तमाशे को ठीक उसी तरह दिखाया जैसा उसने मुझे दौरे पर दिखाया था। मेरे जितने मित्र उस शहर में थे, उन सबको मैंने इस फ़कीर की करामात देखने के लिए बुला लिया था। मैं समझता था कि मेरे मित्रों में शायद कोई मुझसे अधिक चतुर हो और वह इस साधु की चालाकी का पता लगा सके। मेरे बुलाने से कोई २५ आदमी आये। सबने इस बात की यथाशक्ति कोशिश की कि वे इस ब्राह्मण की करामात का कारण ढूंढ़ निकालें, पर सब हतमनोरथ हुए। किसीको अक़ल काम न आई; किसीको कोई चालाकी की बात न देख पड़ी। सब लोगों को मेरी ही तरह हैरत हुई।

"कुछ दिनों के बाद एक नये साहब वहां आये। उनसे लोगों ने इस तमाशे की बात कही; पर उनको विश्वास न आया। उन्होंने इसकी असम्भवनीयता पर एक लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया और हम सब लोगों की अवलोकनशक्ति के विषय में बहुतही बुरी राय क़ायम की। इससे मैंने उनको भी यह तमाशा दिखलाने का निश्चय किया।

"२८ नवम्बर को मैंने उस ब्राह्मण को फिर अपने बँगले पर बुलाया और फिर उसने पूर्वोक्त तमाशे को दिखाया। पर इस दफ़ा उसने उन दोनों बाँसों में से एक को तो निकाल लिया, परन्तु दूसरे को नहीं निकाला। उसपर लड़के का एक हाथ रक्खाही रहा। इसका कारण उसने यह बतलाया कि उस दिन उसकी तबीयत अच्छी न थी और लड़का भी सुस्थ न था। इस दफ़ा मैंने एक फ़ोटोग्राफ़र को भी बुला लिया था। उसने इस तमाशे के सब दृश्यों का फ़ोटो ले लिया। वे साहब, इस दफ़ा, वैसे ही चकित हुए जैसे हम

लोग पहले ही हो चुके थे। उनको भी कोई चालाकी ढूंढ़े न मिली।

"यदि कोई मुझे इस बात को समझा दे कि किस तरकीब से—किस शक्ति से—वह लड़का आकाश में निराधार रह सकता है, तो मैं उसका बहुत कृतज्ञ होऊं। मैं अपना नाम और पता, और जिन साहब और मेमों ने इस तमाशे को देखा है उनके भी नाम, पता समेत, देने को तैयार हूं। मैं, ज़रूरत पड़ने पर, उस ब्राह्मण का भी पता बतला सकता हूं।

"मेरे एक लड़का है। वह इँगलैण्ड में है। उसे मैंने इस तमाशे का हाल लिखा। मुझ पर उसका बड़ा प्रेम है। मेरी शुभकामना की इच्छा से उसने मुझे लिखा—'यदि मैं होता तो ऐसा तमाशा देखने न जाता; क्योंकि बहुत सम्भव है उस ब्राह्मण ने देखनेवालों पर भी अपना असर डाल दिया हो और इस तरह उसके वश में आजाना अच्छा नहीं। यदि उसने ऐसा न किया हो तो सचमुच आश्चर्य्य की बात है'। परन्तु फ़ोटोग्राफ़ लेने के निर्जीव केमरा पर आत्मविद्या का असर नहीं पड़ सकता। अतएव मेरे लड़के की यह कल्पना ठीक नहीं है। इस तमाशे के जो चित्र लिये गये हैं, वे ठीक वैसे ही हैं जैसा कि हम लोगों ने उसे अपनी आँखों देखा है।

"उस ब्राह्मण का कथन है कि मैंने यह विद्या थियासफ़िकल सोसाइटी के स्थापक कर्नल आलकाट से सीखा है। इसके चार पाँच वर्ष पहले तक वह आकाश में उड़ती हुई चिड़ियों की तरफ़ देखकर अपनी इच्छाशक्ति से ही उन्हें ज़मीन पर गिरा सकता था। परन्तु बीच में वह बहुत बीमार हो गया। तब से उसकी यह शक्ति जाती रही।"

* * * * *

यहां सिविलियन साहब का कथन समाप्त हुआ। आकाश में लड़के को निराधार ठहरा देख उन्हें जो आश्चर्य्य हुआ वह युक्त है। परन्तु योग और अध्यात्मविद्या की महिमा को जो जानते हैं उनको ऐसी बातें सुनकर कम आश्चर्य्य होता है। जो लोग पूरे योगी हैं, वे आकाश में स्वच्छन्द विहार कर सकते हैं। जिनको योग के कुछ ही अङ्ग सिद्ध हो जाते हैं, उनमें भी अनेक अलौकिक शक्तियां आजाती हैं। परन्तु ऐसी शक्तियों का दुरुपयोग करना अनुचित और हानिकारक होता है। उनके प्रयोग को दिखा कर खेल तमाशे न करना चाहिए।

कुछ दिन हुए कानपुर में एक योगी आये थे। आपका नाम है आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती। कोई दो महीने तक वे गङ्गा-किनारे थे। वे तैलङ्ग देश के थे। उनके साथ उनका एक चेला भी था। वे सिर्फ़ अपनी देशभाषा, या संस्कृत, बोल सकते थे। संस्कृत में योग-विषय पर उन्होंने दो एक पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से एक पुस्तक कानपुर में छापी भी गई है। उनको आडम्बर बिलकुल प्रिय न था। हिन्दी न बोल सकने के कारण उनके यहां भीड़ कम रहती थी। तिस पर भी शाम सुबह बहुत से पढ़े लिखे आदमी उनके दर्शनों को जाया करते थे। कानपुर के प्रसिद्ध वकील पण्डित पृथ्वीनाथ तक उनके दर्शनों को जाते थे। उनको समाधि तक की सिद्धि है। तीन दिन तक वे समाधिस्थ रह सकते हैं। पर कानपुर में वे जब तक रहे तब तक कोई

तीन ही घण्टे अपने कुटीर के भीतर रहते रहे। अर्थात् तीन घण्टे से अधिक लम्बी समाधि उन्होंने नहीं लगाई। योग और वेदान्त विषय पर वे ख़ूब वार्तालाप करते थे, पर संस्कृत ही में। जो लोग इन विषयों को कुछ जानते थे, उन्हींकी तरफ़ वे मुख़ातिब होते थे, औरों से वे विशेष बात चीत न करते थे। उनसे यह प्रार्थना की गई कि वे सबके सामने समाधिस्थ हों, जिसमें जिन लोगों का योगविद्या पर विश्वास नहीं है उनका भी विश्वास हो जाय। पर ऐसा करने से उन्होंने इनकार किया। उन्होंने कहा कि स्वामी हंसस्वरूप से कहिएगा, वे शायद आपकी इच्छा को पूरी करें। मैं तमाशा नहीं करता। चाहै किसी को विश्वास हो चाहै न हो। बहुत कहने पर आपने दो तीन दफ़ा श्वास चढ़ाया और अपने दाहने हाथ की कलाई सामने कर दी। देखा गया तो नाड़ी ग़ायब; प्राण वहां से खिँच गये। उनके इस दृष्टान्त से, उनके ग्रन्थों से, उनकी बात चीत से, यह सिद्ध हो गया कि वे सचमुच सिद्ध योगी हैं। उनके इनकार ने इस बात को भी पुष्ट कर दिया कि लोगों को दिखाने के लिए योग की कोई क्रिया करना मना है।

सब से बड़ा हीरा।

दक्षिणी आफ़रीक़ा में बोर लोगों की पुरानी राजधानी प्रिटोरिया नगर है। उसके पास प्रीमियर नाम की एक हीरे की खान है। उसमें कुछ समय हुआ एक बहुत बड़ा हीरा निकला है। इस बात का ज़िक्र सरस्वती में आ चुका है। यह हीरा आज कल लण्डन में विराज रहा है। बड़ी ख़बरदारी के साथ ट्रांसवाल से वह लण्डन पहुँचा है। जितने बड़े बड़े हीरे इस समय तक पाये गये हैं, उनसे यह कई गुना बड़ा है। देखने में यह कांच के एक छोटे से ग्लास के बराबर है। जिस समय इसके निकलने की ख़बर दूर दूर तक पहुँची, उस समय इसकी क़ीमत, अन्दाज़न, एक करोड़ रुपये के कूती गई। जिन्होंने इसे देखा है, वे इस अन्दाज़ को ग़लत नहीं बतलाते। यह विशाल हीरा नाप में ४ × २¼ × १¾ इञ्च है। इसका वज़न ३०३२ कैरट है। अर्थात् कोई तीन पाव के क़रीब!

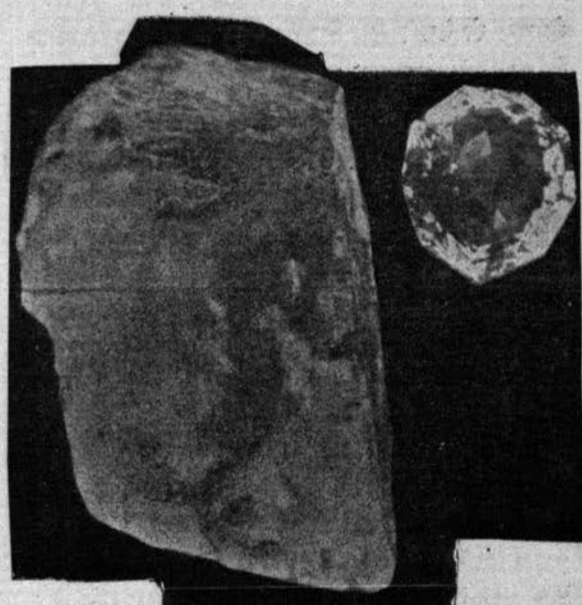

ग्रेट प्रिमायर— (नया आविष्कृत) ३०३२ कैरट।

ग्रैंडडूचक डी टसकनी, १३३·१४ कै०।

यह हीरा प्रायः निर्दोष है। एक आध निशान इसमें कहीं कहीं पर हैं। पर काट कर सुडौल करते समय वे निकल जायँगे और हीरे के आकार में विशेष कमी न होगी। यह बिलकुल सफ़ेद और पारदर्शक है। देखने में यह बर्फ़ का एक बड़ा टुकड़ा सा जान पड़ता है। एक विलायती जौहरी का मत है कि आज तक जितने अच्छे अच्छे हीरे मिले हैं, उन सबसे यह अधिक स्वच्छ

और पानीदार है। इसकी बनावट से मालूम होता है कि अपनी पहली स्थिति में यह हीरा बेहद बड़ा रहा होगा। मुमकिन है इसका वज़न मनों रहा हो! इस प्रचण्ड रत्नराज के नीचे का हिस्सा भर शेष रह गया है; और सब कई टुकड़ों में होकर उड़ गया है। नहीं मालूम, ये उड़े हुए टुकड़े कहां गये, या क्या हुए, अथवा वे कभी किसी को मिलेंगे या नहीं।

आश्चर्य्य की बात है कि हीरा की उत्पत्ति कोयले से होती है। कोयले के समान काली चीज़ से हीरे के समान दीप्तिमान रत्न निकलता है! पृथ्वी के पेट में भरी हुई असीम उष्णता के योग से हीरे बनते हैं। जब वह उष्णता अतुल वेग के साथ पृथ्वी की तहों को तपाती और फाड़ती हुई ऊपर आती है, तब किसी किसी जगह एक विशेष प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया शुरू होती है। जिस जगह इस प्रक्रिया की सहायक सब सामग्री रहती है, उस जगह हीरे की उत्पत्ति होती है। दक्षिणी आफ़रीक़ा की खानों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि वहां पर किसी समय ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह से बहुतही भयङ्कर स्फोट हुए हैं। जिन मुँहों से होकर पृथ्वी के पेट से आग निकली है, वे अब तक बने हुए हैं। उन्हींके आस पास, एक प्रकार की पीली ज़मीन में, हीरे गड़े हुए मिलते हैं। पर उस ज़मीन की बनावट से यह मालूम होता है कि जो हीरे वहां निकलते हैं वे वहीं नहीं बने। वे उससे भी बहुत दूर नीचे बने थे। वहां से ज्वालागर्भ पर्वतों के स्फोट के समय वे ऊपर फेंक दिये गये हैं। विषम ज्वाला और अतिशय दबाव के कारण, वहीं, उतनी गहराई में, कोयले के साथ और और चीज़ों का रासायनिक संयोग होने से वे उत्पन्न हुए होंगे। प्रीमियर खान के पास जो ज्वालावमन हुआ होगा, उसका वेग बहुत ही प्रचण्ड रहा होगा। वेगही की प्रचण्डता के कारण जो हीरा निकला है, उसको शिला के टुकड़े टुकड़े हो गये होंगे।

इस रत्नशिला का जो टुकड़ा निकला है वह छोटा नहीं है। वह बहुत बड़ा है। खान के मालिक उसकी प्राप्ति से बेहद ख़ुश हैं। यह इस तरह की ख़ुशी है कि इसने उनको अन्देशे में नहीं, ख़तरे तक में डाल दिया है। उनको यह विशाल हीरक-रत्न बोझ सा मालूम हो रहा है। कोई मामूली आदमी तो उसे ख़रीदही नहीं सकता। यदि कोई ख़रीदैगा तो राजा या राजराजेश्वर। परन्तु राजेश्वरों को भी इसकी क़ीमत देते खलैगा। इस हीरे की क़ीमत नियत करना केवल एक काल्पनिक बात है; सिर्फ़ एक ख़याली अन्दाज़ है। १७५० से १८७० ईसवी तक हीरे का दाम उसके वज़न के वर्गमूल के हिसाब से लगाया जाता था। दूसरे देशों में हीरे की तौल कैरट से होती है। एक कैरट में चार ग्रेन होते हैं और एक माशे में कोई १५ ग्रेन। प्रत्येक हीरे की क़ीमत उसके रूप, और द्युति के अनुसार होती है। किसीकी थोड़ी होती है, किसी की बहुत। कल्पना कीजिए कि किसी हीरे की क़ीमत फ़ी कैरट १०० रु० के हिसाब से निश्चित हुई। तो दो कैरट की कीमत २ × २ × १००=४०० रुपये और तीन कैरट की कीमत ३ × ३ × १००=९०० रुपये हुए। अब यह जो नया हीरा निकला है इसकी क़ीमत इसी हिसाब से लगाइए। इसका वज़न है ३,०३२ कैरट। अतएव ३०३२ × ३०३२×१०० × ९१९,३०२४०० रुपये क़ीमत हुई! एक अरब के करीब! कौन इतनी क़ीमत देगा। जबसे आफ़रीक़ा में अनेक हीरे निकलने लगे, तब से हीरों की क़ीमत नियत करने का यह तरीक़ा उठ गया। परन्तु जौहरियों का अन्दाज़ है कि यह विशाल हीरा ७५००००० से १५०००००० रुपये तक बिक जायगा। इतना रुपया क्या थोड़ा होता है! बहुधा ऐसा होता है कि बड़े बड़े हीरों को काट काट कर छोटे छोटे टुकड़े कर डाले जाते हैं। इस तरह उन्हें

बेचने में सुभीता होता है। सम्भव है, इस हीरे की भो यही दशा हो। परन्तु इतने अच्छे और इतने बड़े हीरे को छिन्न भिन्न कर देना बड़ी क्रूरता का काम होगा। तथापि बड़े बड़े हीरों को रखना धोखे और ख़तरे में पड़ना है। इतिहास इस बात को गवाही दे रहा है कि जिनके पास बड़े बड़े हीरे रहे हैं, उन्हें अनेक आपदाओं में फँसना पड़ा है।

टिफ़ानो नाम की खान से ९६९ कैरट वज़न का जो हीरा निकला था वह आज तक सबसे बड़ा समझा जाता था। पर इस नये हीरे ने बड़े-पन में उसका भी नम्बर छीन लिया। जिस समय यह हीरा तराश कर ठीक किया जायगा, उस समय इसकी सूरत और ही तरह की हो जायगी और वज़न भी इसका कम हो जायगा। तिस पर भी वह दुनिया भर के हीरों से कई गुना बड़ा रहैगा। प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा, काटने से, वज़न में बहुत कम हो गया है। ·सका आकार भी छोटा होगया है। पहले उसका वज़न ७९३ कैरट था। परन्तु जिस आदमी ने उसे काट छाँट कर ठीक किया, वह हीरा-तराशी के काम को अच्छी तरह न जानता था। इसका फल यह हुआ कि कोहेनूर का वज़न सिर्फ़ २७९ कैरट रह गया। वह एक बार फिर तराशा गया। इस बार कम होकर उसका वज़न १०६ ही कैरट रहगया। इस हीरे का इतिहास पाठकों को मालूम ही होगा। इस लिए पिष्ट-पेषण की क्या ज़रूरत?

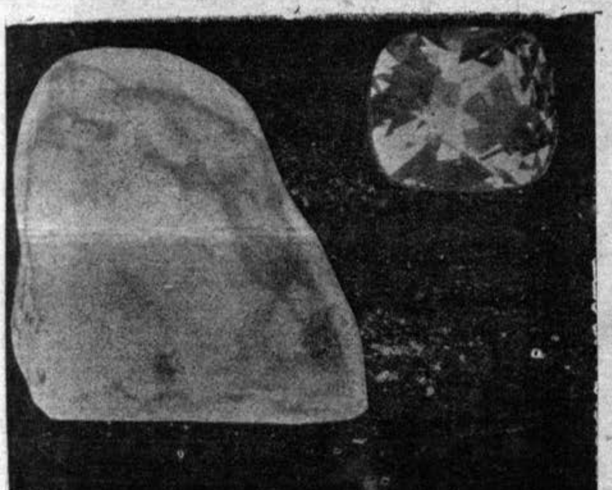

टिफ़ानी, ९६९ कैरट।

इटोयली डी सूड, १२४ कैरट।

कोहनूर—दूसरी बार काटे जाने के बाद, १०६ १/१६ कैरट।

प्रिंस आरलफ़ नाम का हीरा भी एक बहुत प्रसिद्ध हीरा है। वह रूस-राज के पास है। उसका आकार गुलाब का सा है। उसका वज़न १९४ ३/४ कैरट है। फ्लाटाइन नामक हीरा पीले रङ्ग का है। वह आस्ट्रिया के राज-

रूस का बड़ा मोग़ल, २७९ ९/१६ कैरट।

प्रिंस आरलफ़, १९४ ३/४ कैरट।

कोहनूर हीरा, पहली बार काटे जाने के बाद, २७९ कैरट।

भवन की शोभा बढ़ाता है। उसका वज़न १३३ कैरट है। स्टार आफ़ साउथ अर्थात् "दक्षिण का तारा" नाम का हीरा ब्रेज़ील में एक हबशी को १८५३ ई० में मिला था। उसका वज़न २५४ कैरट है। दक्षिणी अमेरिका में जितने हीरे निकले हैं, यह उनमें सबसे बड़ा है। काटने पर इसका वज़न १२४ कैरट रह गया है। रूस-राज के पास एक और बहुत बड़ा हीरा है। उसका नाम है ग्रेट (बड़ा) मोग़ल। उसका आकार बहुत ही अच्छा है। वज़न उसका २७९ कैरट है। सांसी नामक हीरा भी बहुत दिनों तक रूसराज के पास था। पर १८८९ में उसे एक जौहरी ने २,१०,००० रुपये में मोल ले लिया। यह हीरा कई आदमियों के पास रह चुका है। यह सांसी नाम के एक आदमी के पास था। इसी लिए उसका नाम सांसो पड़ा। एक दफ़ा उसे सांसी ने राजा तीसरे हेनरी के पास भेजा। जो आदमी उसे लेकर चला, उसे रास्ते में चोरों ने मार डाला। पर उसने मरने के पहले ही वह हीरा निगल लिया था। इससे वह चोरों को न मिला। सांसी ने उसे उस आदमी के मेदे को फाड़ कर निकाल लिया।

सांसी—४३½ कैरट।

इस तरह कोई चौदह पन्द्रह हीरे इस समय संसार में बहुत अच्छे और बहुत क़ीमती समझे जाते हैं। पर यह नया हीरा द्युति और विशालता में उन सबसे बढ़कर है।

देवनागरी लिपि का उत्पत्ति-काल।

लिपि शब्द लिप् धातु से निकला है। इस धातु का अर्थ है लेप करना या लीपना। लिख् धातु से भी लिपि का बोध होता है। पर उसका अर्थ है लिखना या अक्षर बनाना। लिप् धातु लिख् से पुरानी जान पड़ती है। पहले लेप-द्वारा लिपि होती रही होगी, फिर लेख, अर्थात् अक्षर-विन्यास द्वारा। जिसका क्षर अर्थात् क्षय न हो उसे अक्षर कहते हैं। अक्षरावली बहुत काल तक बनी रहती है, इससे उसका ऐसा नाम हुआ। जितने अक्षर हैं सब, मुख से निकली हुई वाणी, या ध्वनि, के सूचक चिन्ह हैं। तारबर्क़ी में प्रत्येक अक्षर के लिए एक एक चिन्ह नियत है। उन्हीं चिन्हों के योग से शब्द और वाक्य बनते हैं। उसी तरह मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि के चिन्हरूप अक्षर हैं।

अक्षरों का नाम वर्ण भी है। संस्कृत-व्याकरण में वर्ण-शब्द का ही अधिक प्रयोग देख पड़ता है। वर्ण के कई अर्थ हैं। उनमें से एक अर्थ रङ्ग भी है। यथा शुक्ल वर्ण, कृष्ण वर्ण, पीत वर्ण आदि। अक्षरों का नाम वर्ण क्यों हुआ? लिपिकला का प्रादुर्भाव होने के पहले लोग जिस वस्तु का ज्ञान दूसरों को कराना चाहते थे उसका वे चित्र बना देते थे। यदि उन्हें पेड़ लिखना होता था तो वे पेड़ का चित्र बना देते थे, यदि हाथी लिखना होता था तो हाथी का, यदि मनुष्य लिखना होता था तो मनुष्य का। इस तरह की वर्णमाला का प्रचार ईजिप्त अर्थात् मिश्र देश में बहुत समय तक था। वहां की इस प्राचीन लिपि में लिखी गई अनेक शिला-लिपियां योरप के अजायब घरों और पुस्तकालयों में सयत्न रक्खी हुई हैं। ऐसी लिपियां प्राचीन मन्दिरों और समाधियों में अब तक पाई जाती हैं। जैसे जैसे इस तरह की लिपि

अधिक काम में आती गई वैसेही वैसे लोग, जल्दी के कारण, वस्तुओं के चित्र की पूर्णता की तरफ़ कम ध्यान देते गये। जैसे, यदि उन्हें आदमी का चित्र बनाना होता ते वे आदमी के हाथ, पैर, धड़ और सिर का स्थूल आकार मात्र लिख देते। इस तरह अनेक वस्तुओं के चित्र, धीरे धीरे, यहां तक बिगड़ गये कि उनके आकार से उनका ज्ञान न होने लगा। यह बात चीन और जापान की वर्णमाला से सिद्ध है। इन देशों की वर्ण-मालायें भी वस्तु-चित्रण के आधार पर बनी हुई हैं।

कुछ समय तक इस तरह की वर्णमाला से काम चला। पर गुणवाचक शब्द और विशेषण लिखने में गड़बड़ होने लगा। लाल और काले घोड़े को लोग लाल और काले रङ्ग से लिख देते। पर विद्वान् और मूर्ख मनुष्य का चित्र बनाने में उन्हें सुभीता न होता। क्रियाओं के रूप लिखने में भी उन्हें कठिनता का सामना करना पड़ता। इससे प्रयोज्य शब्दों की संख्या जब बढ़ गई तब चतुर मनुष्यों ने सङ्केत रूपी वर्ण बनाये। यद्यपि इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता कि इस देश में भी कभी मिश्र और चीन की ऐसी चित्ररूपिणी लिपि का प्रचार था, तथापि कई पुरातत्व के पण्डितों का अनुमान है कि था ज़रूर। इसके प्रमाण में वे देवनागरी अक्षरों—विशेष करके अशोक के समय वालों—का सादृश्य रोज़मर्रा की व्यवहारिक चीज़ों और मनुष्य के अवयवों से बतलाते हैं। वे कहते हैं कि रज्जु (रस्सी) का चिन्ह या चित्र र है; पाणि (हाथ के पञ्जे) का चिन्ह प है; और गतिसूचक पैरों का चिन्ह ग है। वर्ण शब्द से यह अनुमान होता है कि भारतवासी मिश्र की रङ्ग बिरङ्गी चित्रलिपि से परिचित थे। ऐसी लिपि में रङ्ग काम आता था। इसीसे जब प्राचीन आर्यों ने अपने यहां लिपि के सङ्केत निश्चित किये, तब उन्होंने उन सङ्केतों का नाम वर्ण और उनके समुदाय का नाम वर्णमाला रक्खा।

योरप के प्रसिद्ध संस्कृतवेत्ता मोक्षमूलर साहब ने संस्कृत भाषा का इतिहास लिखा है। उसमें आपने इस विषय का बहुत विचार किया है कि इस देश की देवनागरी वर्णमाला की सृष्टि कब हुई और उसे भारतवासी आर्यों ने कहां से पाया। आपकी राय है कि यह वर्णावली प्राचीन सेमिटिक अक्षरों से निकली है। पर इस देश के पुरातत्वज्ञ पण्डितों को यह बात मान्य नहीं है। देवनागरी वर्णमाला संसार की समस्त वर्ण-मालाओं से अधिक पूर्ण, अधिक नियमानुसारिणी और अधिक शृङ्खलाबद्ध है। मनुष्य का मुँह—कण्ठ, तालू, मूर्धा, दाँत, ओंठ और जीभ आदि—अवयवों में विभक्त है। जितने प्रकार की ध्वनियाँ मुँह से निकलती हैं, उन सब को, देवनागरी वर्ण-माला के आविष्कर्ताओं ने अपने अपने अवयव के अनुसार, यथानियम, वर्णरूपी चिन्हों से बाँध सा दिया है। इसीसे चाहे जैसी ध्वनि मुँह से निकले, नागरी में वह तद्वत् लिखी जा सकती है। इसीसे इस वर्णमाला का इतना आदर है। इसीसे यह वर्णमाला संसार की और वर्णमालाओं में श्रेष्ठ है। जो गुण इसमें है वह और वर्णमालाओं में नहीं। अर्थात् कण्ठस्वर के अनुसार जैसी इसके वर्णों की रचना है, वैसी न सेमिटिक की है, न ग्रीक की है, न अरबी की है। इसीसे इस देश के पण्डित पाश्चात्य पण्डितों की पूर्वोक्त उक्ति का प्रचारण-पूर्वक खण्डन करते हैं और कहते हैं कि हमारी वर्णमाला एक मात्र हमारी सम्पत्ति है। उस पर किसी दूसरे का अणु-रेणु भर भी स्वत्व नहीं। यदि उस पर कोई किसी तरह का दावा करै तो वह झूठ। जनरल कनिंहाम आदि कई योरोपियन पण्डितों की भी ऐसी ही राय है।

देवनागरी वर्णमाला भारतवर्ष की सबसे पुरानी वर्णमाला है। आर्यभाषा-सम्बन्धिनी जितनी अन्य वर्णमालायें इस समय प्रचलित हैं, सब उसी से निकली हैं। जिस समय उसकी उत्पत्ति हुई, उस समय उसका वह रूप न था जिस रूप में

हम उसे इस समय देखते हैं। इस संसार में कोई चीज़ स्थिर नहीं; सब में परिवर्तन हुआ करता है। संसार ख़ुदही परिवर्तन-शील है। अतएव भाषा और वर्णमाला भी परिवर्तन के नियमों से ख़ाली नहीं। जिस तरह भाषा हमेशा बदला करती है, उसी तरह लिपि भी बदला करती है। देवनागरी लिपि ने भी अपने जन्म से लेकर आज तक अनेक रूप धारण किये हैं। उसके क्रम-प्राप्त रूपान्तरों का चित्र एक दफ़ा सरस्वती में छप चुका है। प्रसंगवश उसे हम फिर यहां पर प्रकाशित करते हैं।

वेदों का नाम है श्रुति। सुन कर ही उनका ज्ञान पहले होता था। इसीसे उनको श्रुति की संज्ञा मिली। यदि वे लिपिबद्ध होते तो, सम्भव है, उनको श्रुति-संज्ञा न प्राप्त होती। वेदों में लिपि या लिखने का ज़िकर नहीं। इससे विद्वानों का अनुमान है कि वेद-काल में लिपि की उत्पत्ति न हुई थी। वेदों का ज्ञान लोगों को सुन कर ही होता था, लिखी हुई पुस्तक देख कर नहीं। वेदों के एक भाग का नाम है ब्राह्मण। वे गाथामय हैं। उनकी रचना गद्य में है। उनमें भी लिपि-सम्बन्धिनी कोई बात प्रत्यक्ष रीति पर नहीं। पर उनके रचना-क्रम पर विचार करने से जान पड़ता है कि ब्राह्मण-काल में नागरी लिपि की उत्पत्ति हो चुकी थी। पुरातन साहित्य के ज्ञाता कहते हैं कि ईसा के आठ नौ सौ वर्ष पहले ब्राह्मण-काल का आरम्भ होता है। अर्थात् हमारी वर्णमाला को उत्पन्न हुए कोई २७०० वर्ष हुए। परन्तु मोक्ष-मूलर आदि पाश्चात्य पण्डित इस बात का खण्डन करते हैं। वे कहते हैं कि लिख् या तत्समानार्थक धातुओं से बने हुए कोई शब्द ब्राह्मणों में नहीं पाये जाते। अतएव उस समय लिपि-सृष्टि का प्रादुर्भाव मानना असिद्ध है। इस आपत्ति का उत्तर यह दिया जाता है। वेद के ब्राह्मण-भाग में जो गाथायें हैं, उनमें जगह जगह पर श्रुति के हवाले हैं। प्रसङ्गानुकूल जिन श्रुतियों का उल्लेख किया गया है उनके सिर्फ़ आरम्भ के दो चार शब्द लिखकर उनका स्मरण दिलाया गया है। यदि उस समय ब्राह्मण-ग्रन्थ शृङ्खलाबद्ध होकर न लिखे गये होते तो इस प्रकार गाथाओं के बीच में ऋचाओं के आदि शब्द देकर उनका हवाला न दिया जाता। वेद का संहिता भाग भी उस समय ज़रूर लिपिबद्ध हो गया होगा। क्योंकि जो ग्रन्थ लिखित और विशेष रूप से प्रचलित नहीं होता, उसके वाक्य दूसरे ग्रन्थों में यथानियम नहीं उद्धृत किये जा सकते। फिर वेदों में जितनी पंक्तियां दुबारा हैं, उनकी गिनती शतपथ ब्राह्मण के दसवें काण्ड में है। यदि वेद उस समय लिखित न होते तो उनकी पंक्तियों की गिनती कैसे हो सकती?

और, यदि, ब्राह्मण या संहिता में लिपि-विषयक कोई प्रमाण न भी पाया जाय तो क्या उससे यह सिद्ध हो सकता है कि उस समय लिखने की कला उत्पन्न ही न हुई थी? कोई भी नया आविष्कार होने पर उसका प्रचार होने में देर लगती है। सम्भव है संहिताकाल ही में लिखने की कला लोगों को मालूम होगई हो, पर उन्होंने वेदादि महत्वपूर्ण ग्रन्थों को लिखना न शुरू किया हो। उन्हें वे परम्परा की प्रथा के अनुसार सुनकर ही याद करते रहे हों। जब तक किसी बात के अस्तित्व के प्रतिकूल कोई प्रमाण न दिया जाय, तब तक अनुमान मात्र से उसके होने में सन्देह करना अन्याय है।

मनुस्मृति, महाभारत और अष्टाध्यायी में 'लिख्' धातु से बने हुए शब्द स्पष्ट रीति से पाये जाते हैं। परन्तु संस्कृतज्ञता में प्रसिद्धि पानेवाले पश्चिमी विद्वान् उनके अर्थ के सम्बन्ध में भी तरह बेतरह के कुतर्क करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनसे लिपि-कला का अस्तित्व नहीं साबित होता। हम इन विद्वानों पर यह दोष नहीं लगाते कि ये जान बूझ कर अर्थ का अनर्थ करना चाहते हैं। पर यह बात अवश्य है कि ये लोग कभी कभी ऐसी शङ्कायें कर बैठते हैं जिनको सुनकर इस